ऋषि दयानन्द
चित्र दर्शन
सत्य, प्रेम, धर्म, ज्ञान और
मानवता के रक्षक-वेदोद्धारक
महापुरुष का
सचित्र जीवन दर्शन

सत्य, प्रेम, धर्म, ज्ञान और
मानवता के रक्षक-वेदोद्धारक
महापुरूष का
सचित्र जीवन दर्शन

महापुरुष का जन्म

विदेशी आक्रान्ताओं ने ९०० वर्ष तक हमें मिटाने प्रबल प्रयत्न किया। अंग्रेज भी राज्य बल से राम-कृष्ण वेद-शास्त्र की परम्परा को समाप्त कर ईसाइयत का प्रचार करते हुए हमें समाप्त करने में लगे हुए थे।

चारों ओर निराशा थी। अज्ञान छाया था। कुरीतियों, पाखंड और अंधविश्वासों ने संसार के सबसे महान् देश भारत को जर्जर बना दिया था।

हम अपने गौरव को भूलते जा रहे थे। दासता और दमन से भारत की आत्मा अंधेरे में भटक रही थी। कोई नहीं समझ पा रहा था कि क्या करें ? कहाँ जाएं ?

१८५७ के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के बाद सभी के मन बुझे हुए थे। और ऐसा प्रतीत हो रहा था कि ईसा की आँधी में राम-कृष्ण वेद-शास्त्र का नाम लेने वाला भी कहीं दिखाई न देगा।

ऐसे संकट काल में गुजरात प्रान्त के टंकारा ग्राम में १२ फरवरी सन् १८२५ को श्री करषन लाल त्रिवेदी के घर एक बालक का जन्म हुआ, जिसका नाम था "मूलशंकर"।

यही मूलशंकर आगे चलकर महर्षि दयानन्द के नाम से भारत के धर्म, संस्कृति और परम्परा का रक्षक बना।

इसी महापुरुष ने भारत को स्वतन्त्र कराने की आधार शिला रखी। इसी ने तिलक-गोखले गाँधी-सावरकर को आगे बढ़ने की प्रेरणा की।

पाखंडों का खंडन, अज्ञान का विध्वंस और सत्य का प्रकाश कर ऋषि दयानन्द ने भारत को नयी ज्योति प्रदान की—

राम-कृष्ण ऋषि मुनियों की पावन परम्परा को पुनः जागृत करने और वेद ज्ञान का प्रचार करने के लिए मानव जाति सदा दयानन्द की जय-जयकार करेगी।

आओ, उस महापुरुष के जीवन का दर्शन करें, और अपना जीवन सफल बनाएं—
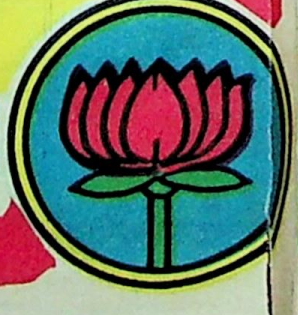
महर्षि दयानन्द के प्रति !

◆ ◆ ◆

आदि मनुज से, सुन्दरतम तुम,
आदि 'प्राण' से सुन्दर प्राण ।

तुम 'मानव' थे युग मानव या,
मानवता के ही अभियान !

तुम अद्भुत थे, मंजुल कवि की,
शाश्वत् वीणा के अनुरूप ।

तुम में झाँक रहा था ऋषिवर !
सतयुग का अभिनव प्रारूप !!

बीच भंवर जग नाव पड़ी थी, तुम ही खोज सके पतवार
हे युग स्रष्टा ! हे युग द्रष्टा ! हे युग गौरव ! युगा धार !!!

--राकेश रानी
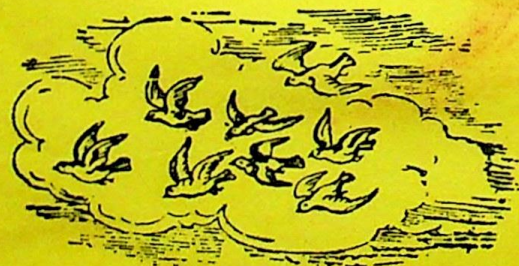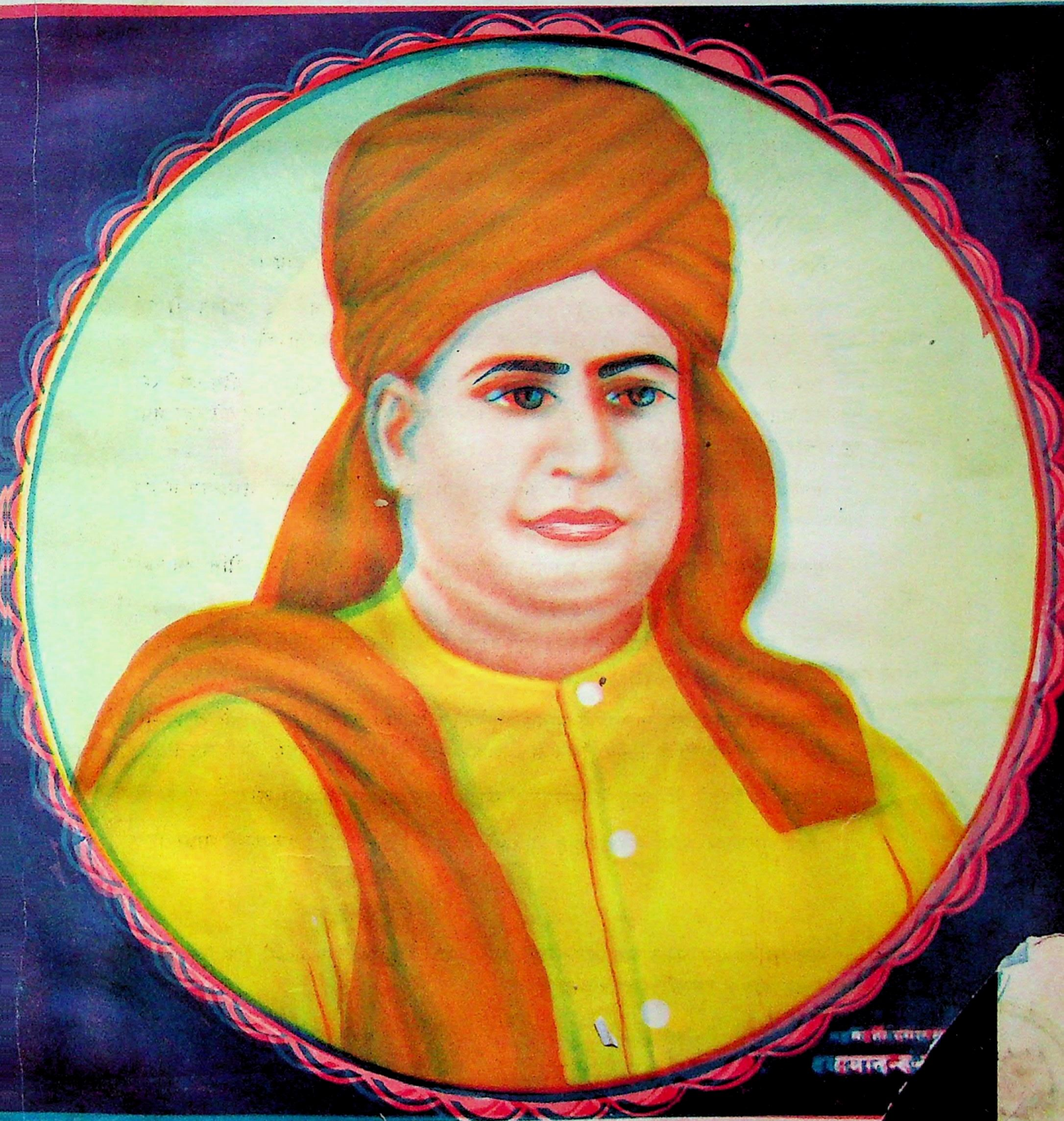
जागरण का मन्त्र

शिवरात्रि थी !

बालक मूलशंकर के पिता धार्मिक विचारों के पवित्र ब्राह्मण थे। उन्होंने "मूल" को आज्ञा दी कि आज तुम्हें व्रत रखना होगा। रात को जागना होगा।

मूलशंकर ने पूछा कि इससे क्या लाभ होगा ?

पिता का उत्तर था कि व्रत और जागरण से सच्चे शिव के दर्शन होंगें।

बालक ने श्रद्धा से व्रत रखा और रात को जागता रहा। सारे बड़े-बड़े व्यक्ति सो रहे थे और बालक मूलशंकर जागता रहा था। उस के मन में आशा थी 'शिव' दर्शन की।

इतने में उसने देखा कि एक चूहा शिव की मूर्ति पर चढ़कर कूद रहा है। भोग खा रहा है। बालक का मन प्रश्न कर उठा—नहीं, यह मूर्ति शिव नहीं हो सकती; जो एक चूहे को नहीं भगा सकता वह संसार को कैसे चला सकता है ?

बालक ने पिता को उठाया, अपने मन का प्रश्न पूछा पर पिता कोई समाधान न कर सके। बालक को डांट दिया।

मूलशंकर घर चला आया और खा-पीकर सो रहा। पर मन में तो ज्ञान-ज्योति जग चुकी थी।

कहां है 'शिव', कैसे मिलता है वह, कहां रहता है वह, कैसे उससे मिलें ? पर प्रश्नों का उत्तर किसी के पास नहीं था।

तभी प्रिय बहन और चाचा की मृत्यु ने मूलशंकर के मन को व्याकुल कर दिया। मृत्यु क्या है ? क्या यह टल सकती है ? क्या शिव से मिलकर मृत्यु से बचने का मार्ग मिल सकता है ?

'शिव' से मिलने की चाह ने 'मूलशंकर' को जागरण का मंत्र दिया। और.........

फिर मूलशंकर माया ममता छोड़ शिव की खोज में निकल पड़ा। एक लम्बी यात्रा पर...

बालक का मन प्रश्न कर उठा—नहीं, यह शिव नहीं हो सकता। जो एक चूहे को नहीं भगा सकता वह संसार को कैसे चला सकता है।

शाश्वत प्रश्न ? क्या सभी को मरना होगा ?

मूलशंकर कर्षण जी के ज्येष्ठ पुत्र थे। उनकी दो छोटी बहनें थीं और दो छोटे भाई। इस प्रकार वे पाँच भाई बहन थे। जब मूलशंकर १६वें वर्ष में चल रहे थे, एक दिन उन्हें किसी इष्ट मित्र के यहाँ आयोजित नृत्योत्सव में अपने पारिवारिक जनों के साथ जाना पड़ा। अभी उत्सव प्रारम्भ ही हुआ था कि घर का नौकर दौड़ता हुआ वहां पहुँचा और उसने सूचना दी कि उनकी १४ वर्षीय बहिन को विषूचिका (हैजा) हो गया है। इस सूचना ने मूलशंकर और पारिवारिक जनों पर सहसा ही वज्रपात कर दिया। सभी तुरन्त वहां से उठकर घर पहुँचे। बीमार बालिका का औषध उपचार किया गया, किन्तु वैद्यों की सारी दौड़ धूप भी बालिका को कराल काल के गाल में जाने से न रोक पाई। चार घंटे की अवधि में ही मूलशंकर की प्रिय बहन इस संसार के बन्धनों से सदा के लिए मुक्त हो गई।

सम्पूर्ण परिवार बालिका के नश्वर देह के समीप अविरल अश्रुधारा प्रवाहित कर अपनी व्यथा को व्यक्त कर रहा था, किन्तु बालक मूलशंकर अपनी भगिनी की शय्या के समीप दीवार से सटा हुआ अश्रु के महासागर को उफनने से रोके गंभीर विचारों में खोया हुआ था। उसकी दृष्टि एकटक शव पर गड़ी थी और मस्तिष्क में हो रही थी एक अवर्णनीय हलचल। मूलशंकर के मन में एक ही प्रश्न कौंध रहा था। अपनी भगिनी के समान ही एक दिन मुझे भी काल के गाल में समाना होगा ? कोई भी इस स्थिति से बचा न रह सकेगा ? फिर कोई उपाय तो सोचना ही होगा जिससे जन्म मरण की दारुण व्यथा से मुक्ति मिले और अमरतत्व की प्राप्ति हो। इस घटना के सम्बन्ध में महर्षि ने अपनी आत्मकथा में लिखा:—

उस भगिनी के वियोग का शोक मेरे जीवन का प्रथम शोक था। उस शोक से मेरा हृदय विलक्षण रूप से व्यथित हुआ। जिस समय मेरे आत्मीय और स्वजन उस भगिनी के चारों ओर रोदन और विलाप करते थे उस समय मैं पाषाण निर्मित मूर्ति के समान अविचल भाव से खड़ा हुआ सोच रहा था कि इस संसार में सब मनुष्यों को ही मृत्यु के मुख में जाना पड़ेगा। इसी प्रकार मुझे भी एक दिन मृत्यु का ग्रास बनना होगा। फलतः मैंने सोचा—किस जगह जाने से मैं मृत्यु की यन्त्रणा से बच सकूँगा और मुक्ति के पथ का दर्शन कर सकूँगा। मैंने उसी जगह खड़े-खड़े यह संकल्प कर लिया कि जिस प्रकार से हो सकेगा उसी प्रकार से मैं प्रयत्न कर अवर्णनीय मृत्यु क्लेश से अपनी रक्षा करूँगा।

जब मूलशंकर ने १९वें वर्ष में पग धारा तो उनसे अत्यधिक स्नेह करने वाले उनके चाचा जो विषूचिका रोग से पीड़ित हुए और चिर विदाई ले ली। भगिनी के निधन पर जो मूलशंकर अपने आंसुओं के महासागर का बांध टूटने से रोक पाने में सफल रहे थे, चाचा जी के देहावसान पर फूट-फूटकर रो पड़े और उनकी वैराग्य वृत्ति और भी अधिक उद्दीप्त हो उठी।

और वे चल पड़े सत्य की खोज में—
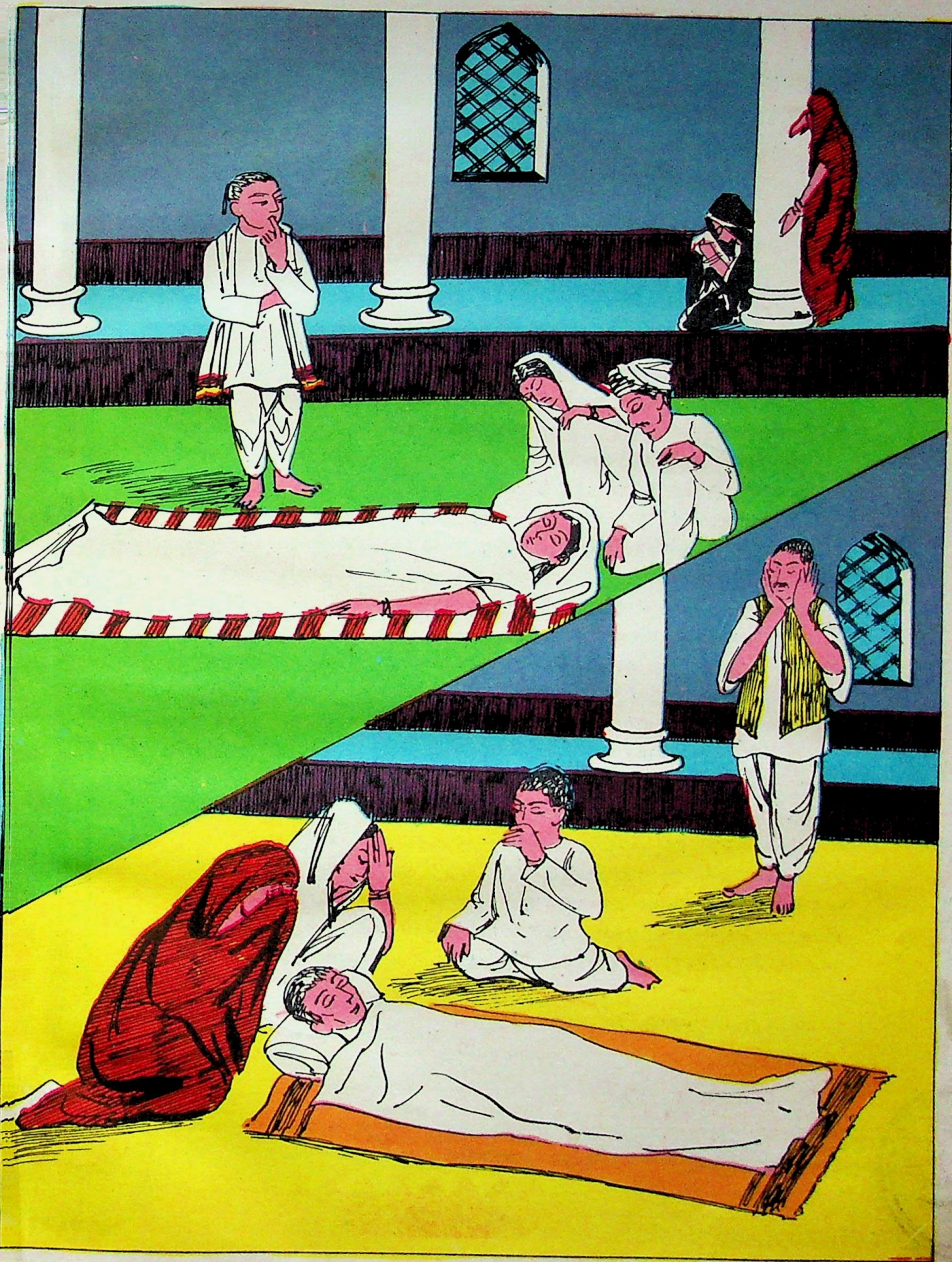
सत्य की खोज में......

मृत्यु से छुटकारा पाने और सच्चे शिव को जानने के लिए मूलशंकर माता-पिता परिवार को मोह छोड़कर घर से निकल पड़े और सायला नामक ग्राम में जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने एक ब्रह्मचारी से ब्रह्मचर्य व्रत की दीक्षा ली और 'शुद्ध चैतन्य' बन काषाय वस्त्र धारण कर हाथ में तूम्बा पकड़ लिया। मूल जी अब योगाभ्यास में दत्तचित्त हो गये। वहीं से वे एक दिन कोटा कांगड़ा जा पहुँचे।

यहाँ से वह सिद्धपुर पहुँचे और नीलकंठ महादेव के उस स्थान पर ठहरे, जहाँ एक दंडी संन्यासी और अनेक ब्रह्मचारी ठहरे हुए थे। कोट कांगड़ा में मूलशंकर की भेंट एक पूर्वपरिचित वैरागी से हुई। उसने उनके पिता को पत्र लिखकर यह सूचित कर दिया कि तुम्हारे पुत्र ने भगवे वस्त्र धारण कर लिये हैं और वह ब्रह्मचारी वेश में यहाँ से कार्तिकी मेले में सम्मिलित होने हेतु सिद्धपुर गया है।

मूलशंकर के पिता जी के लिए पत्र आशा की एक किरण बन गया और वे चार सिपाहियों को साथ लेकर सिद्धपुर जा पहुँचे। मेले में घूम फिरकर एक दिन प्रातः-काल वे उस शिवालय में जा पहुँचे जहाँ उनका पुत्र काषाय वस्त्र धारण किये बैठा था। पुत्र को इस वेश में देखते ही उनकी क्रोधाग्नि भड़क उठी और वे गरज उठे, "तुमने हमारे कुल को सदैव के लिए कलंकित कर दिया है, मूलशंकर!" उन्होंने आवेश में और भी बहुत कुछ कह डाला। उस समय पिताजी की ताड़ना से मुक्ति पाने हेतु मूलशंकर (शुद्ध चैतन्य) ने अपने पिता के दोनों चरण पकड़ लिए और बोले, "मैंने बहकावे में आकर गृह त्याग दिया था। अब मैं आपके साथ ही घर चलने को तैयार हूँ।"

पुत्र के इस पश्चात्ताप से भी पिता की क्रोधाग्नि शांत न हो पाई और उन्होंने शुद्ध चैतन्य का तूम्बा तोड़ दिया तथा गेरुए कुर्त्ते के भी तार-तार कर डाले। वे उन्हें श्वेत वस्त्र पहनाकर अपने ठहरने के स्थान पर लिवा ले गये। वहाँ भी पिता के कटु वचनों का सिलसिला जारी रहा। वे बोले, "तेरी माता रो रोकर प्राण दे रही है और तू ऐसा कठोर हृदय है कि मातृ हत्या करने पर उतारू है।" शुद्ध चैतन्य ने नितांत विनीत भाव से पिता को आश्वासन दिया, 'अब आप निश्चिन्त होकर जाइए। मैं आपके साथ चलकर माता जी के दर्शन करूँगा।" इस पर भी पिता निश्चिन्त न हो पाये और उन्होंने अपने पुत्र पर कड़ा पहरा लगा दिया और सैनिकों को निर्देश दिया कि इस पर कड़ी दृष्टि रखी जाये।

अपने पिता से मूलशंकर की यह अंतिम भेंट
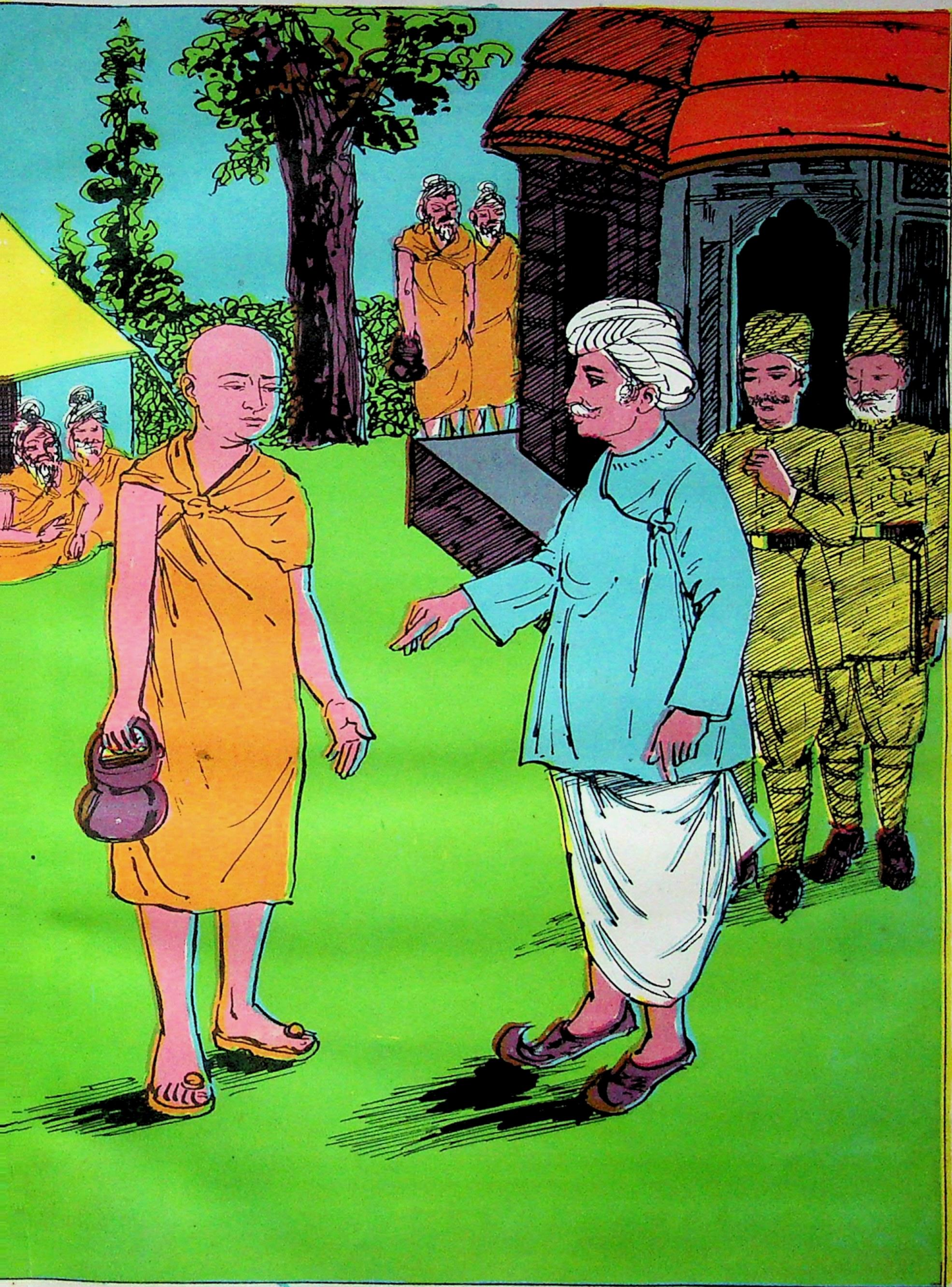
बन्धन से मुक्ति

मृत्युंजय बनने की साधना को हृदय में बसाये मूलशंकर ने पिता को क्षणिक मोह के वशीभूत हो आश्वासन तो दे दिया था, किन्तु उनका मन अपने भावी जीवन की दिशा निर्धारित कर चुका था। जिनके मन में चाह होती है, वे राह भी खोज निकालते हैं। अतः उन्होंने पितृ बन्धन में दो दिन और दो रातें बिता दीं। तीसरा दिन भी ज्यों-त्यों कर कट गया। तीसरी रात भी आधी बीत गई। उन्होंने प्रगाढ़ निद्रा का अभिनय किया। तीसरा पहर आरम्भ हुआ। दैवयोग से पहरे पर तैनात सैनिक ऊँघते-ऊँघते निद्रा में लीन हो गये और इस अवसर का लाभ उठाकर ब्रह्मचारी शुद्ध चैतन्य ने बन्धनों से मुक्त होकर पुनः अपनी राह ली। हाँ, चलते समय उन्होंने अपने हाथ में एक जलपात्र अवश्य ही ले लिया कि यदि कोई पूछे तो कह सके कि 'लघुशंका' से निवृत्त होने जा रहा हूँ। बिना रोक टोक भागते चलते शुद्ध चैतन्य सिद्धपुर से आध कोस दूर स्थित एक उद्यान में जा पहुँचे। वहाँ एक पुराना देवालय था। शुद्ध चैतन्य वहाँ लगे एक वट वृक्ष की शाखाओं पर चढ़कर मन्दिर के शिखर पर जा छिपे और फिर विचारों में खो गये कि देखें अब क्या होता है ?

उन्हें ढूंढ़ने के लिये रात्रि में ही दौड़ धूप आरम्भ हो गई थी। लोग उन्हें खोजते हुए उस उद्यान में भी जा पहुँचे, जहाँ वह छिपे थे। इन लोगों ने मन्दिर के बाहर भीतर ढूंढ़ा, उद्यान के मालियों से भी पूछताछ की किन्तु खोज करने वालों की दृष्टि ब्रह्मचारी पर न पड़ पाई। रात्रि के चार बजे तक यह क्रम जारी रहा और ब्रह्मचारी भी ऐसे दुबके बैठे रहे कि किसी को भी उसका आभास न हो पाया। हिलना डुलना, खांसना तो दूर रहा वे अपने श्वास-प्रश्वास की गति को भी रोके रहे। सारा दिन उन्होंने मन्दिर के शिखर पर ही बिता दिया और सायंकाल कुछ अन्धेरा हो जाने पर ही शिखर के नीचे उतरे और सड़क को छोड़कर अलग मार्ग से आगे बढ़ चले। उस ग्राम से दो कोस के अन्तर पर जाकर उन्होंने एक ग्राम में विश्राम किया। उनके पिता कई दिन सिद्धपुर में रहने के उपरांत अंततः निराश लौट गये।

इस प्रकार बंधनों से मुक्ति पाकर मूलशंकर अपने और युग के निर्माण के लिए चल पड़े, एक लम्बी यात्रा पर

मूलशंकर से दयानन्द

सत्य की खोज के लिए मूलशंकर ने संन्यास आश्रम में प्रविष्ट होने का संकल्प किया। उन्होंने अपने मित्र एक दाक्षिणात्य ब्राह्मण के माध्यम से स्वामी चिदाश्रम के समक्ष अपने संकल्प की अभिव्यक्ति भी की। उन्होंने मूलशंकर के अभी युवक होने का तर्क प्रस्तुत कर असहमति व्यक्त की किन्तु यह असहमति और अस्वीकृति भी इस युवा ब्रह्मचारी के संकल्प को न डिगा पाई और वे विद्याध्ययन एवं योगसाधना में रत रहते हुए इस प्रतीक्षा में रहे कि कोई अन्य सुयोग्य संन्यासी मिले और वे उनसे दीक्षा लेकर अपने संकल्प को क्रियान्वित करें। इसी प्रतीक्षा में उन्होंने नर्मदा के तटवर्ती क्षेत्र में १-२ वर्ष की अवधि बिता दी और २४वें वर्ष में प्रविष्ट हो गये। एक दिन उन्हें अपने संकल्प को क्रियान्वित करने का सुअवसर मिल ही गया।

एक श्रेष्ठ संन्यासी एवं महान् विद्वान् स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती के चाणोद से डेढ़ कोस के अन्तर पर स्थित वनखंड में आ विराजने का शुभ समाचार उन्हें प्राप्त हुआ और वह अपने मित्र उपरोक्त दाक्षिणात्य पंडित सहित स्वामी जी की सेवा में उपस्थित हो गये। बुद्धि की कसौटी पर प्रत्येक तथ्य को तोलने के अभ्यस्त शुद्ध चैतन्य ने स्वामी पूर्णानन्द से विचारविमर्श करने के उपरांत संन्यास आश्रम की दीक्षा देने की दृष्टि से उन्हें सर्वथा योग्य पाया तथा उन्हें इस बात के लिए मना लिया कि वह उन्हें संन्यास आश्रम की दीक्षा देने का कार्य सम्पन्न करें।

व्रत, उपवास आदि का दो दिवस का क्रम चला और अन्ततः वह शुभ घड़ी आ गई जब शुद्ध चैतन्य को स्वामी पूर्णान्द ने दीक्षा देकर उन्हें दयानन्द सरस्वती नाम दिया। अब शुद्ध चैतन्य दयानन्द हो गये और उनके हाथों में सुशोभित हो उठा दंड और कमंडल। इस प्रकार युग परिवर्तन का प्रथम चरण आरम्भ हुआ।

अलखनन्दा के किनारे

हिमगिरि की ऊँची चोटी पर, खड़ा हुआ वह देव पुरुष था,

सोच रहा था मन मंदिर में, ज्योति सत्य की कैसे जागे,

अंधकार जो छाया जग में, उसको कैसे दूर भगायें,

सत्यसुधा का सोम धरा पर बरसा कर नव ज्योति जगाऊँ।

बद्रीनाथ-गंगोत्री क्षेत्र में सच्चे योगिजनों की खोज में भटकते हुए स्वामी दयानन्द ने हिमालय की यात्रा की। अलखनन्दा की वेगवती धारा को पार करते हुए उन्हें असीम शारीरिक कष्ट हुआ। पर वे बढ़ते गए।

योगियों की खोज की उत्कंठा ने उन्हें अनेक स्थलों पर जाने की प्रेरणा की। उनकी कामना थी कि कोई ऐसा मार्ग दर्शक मिल जाए जो उन्हें जीवन के सत्य से परिचित करा सके।

जीवन क्या है ? मृत्यु क्या है, सत्य क्या है ? धर्म क्या है इन प्रश्नों पर सोचते चिन्तन करते।

दयानन्द अलखनन्दा के किनारे खड़े

प्रभु की अपार लीला का दर्शन करते हुए

विचार सागर में लीन हैं—

गंगा से नर्मदा की ओर

सच्चे योगियों की खोज में जब हिमालय की चोटियों पर दयानन्द को निराश होना पड़ा तो वे उस खोज में नर्मदा की ओर चल पड़े।

१९१३ के चैत्र मास में महर्षि दयानन्द नर्मदा नदी के स्रोत की खोज में निकल पड़े। वे किसी से भी मार्ग न पूछते हुए अपनी धुन में रमे दक्षिणाभिमुख हो बढ़ते चले जा रहे थे कि एक विस्तृत और सघन वन में जा पहुँचे। पहले पहल तो उन्हें यह वन सर्वथा जन शून्य दृष्टिगोचर हुआ। किन्तु जब उन्होंने ध्यान से देखा तो उन्हें कुछ दूरी पर कई झोंपड़ियाँ सी दृष्टिगोचर हुई। प्यास ने स्वामी जी का कंठ सुखा दिया था, अतएव वे उन्हीं झोंपड़ियों मे से एक में गये। उसमें निवास करने वाले व्यक्ति ने स्वामी जी को पीने के लिए दूध प्रदान कर अतिथि सत्कार की परम्परा का पालन किया। दूध पीकर एवं कंठ में आई शुष्कता को मिटाकर कर्मयोगी दयानन्द ने पुनः अपनी राह ली। अभी वे थोड़ी-सी दूरी पर पहुँचे होंगे कि उन्हें आगे का मार्ग लुप्त-सा प्रतीत हुआ। यत्र-तत्र कुछ पगडंडियाँ अवश्य ही दृष्टिगोचर हो रही थीं। स्वामी दयानन्द उन्हीं में से एक पर बढ़ चले। वे अभी लगभग डेढ़ मील चले होंगे कि उन्होंने अपने आपको एक निविड़ वनखंड में पाया, जहाँ चतुर्दिक् अनेक झड़बेरियाँ थीं और थी लम्बी-लम्बी घास। ऐसे स्थान में तो पगडंडियां भी विलुप्त हो गई थीं। महर्षि असमंजस में थे कि किस ओर पग बढ़ायें। सहसा ही एक कुपित रीछ दौड़ता हुआ आया और वह हिंसक जीव चिघाड़ता और गुर्राता हुआ अपने दोनों पावों पर खड़ा हो गया। उसने अपना मुख खोला और स्वामी जी की ओर लपका। अब तक आश्चर्य चकित होकर खड़े हुए महर्षि दयानन्द को लगा कि यह हिंसक जीव तो उन्हें धर दबाने को ही आतुर है। अतव उन्होंने अपना सोटा उठाया और उसकी ओर घुमा दिया, जिसे देखते ही वह रीछ वहाँ से भाग निकला।

उनके जीवन की इस घटना को कर्नल अल्काट एवं देवी ब्लैवैट्स्की ने उनके योगी होने का परिचायक बताया है। उनका कथन है कि इस हिंसक पशु का महर्षि के हाथ के दंड को देखते ही पलायन वस्तुतः महर्षि दयानन्द की योग शक्ति का ही परिणाम था।

ऐसे थे महान् योगी दयानन्द

गुरु के चरणों में

मूलशंकर घर से निकला था ज्ञान की खोज में—
ज्ञान की खोज में स्वामी पूर्णानन्द जी से संन्यास ग्रहण कर वह स्वामी दयानन्द बन गया। नाना स्थानों पर ज्ञान की खोज में भटकता रहा पर कहीं तृप्ति न मिली।

तभी उसे ज्ञान हुआ कि मथुरा में एक महान् विद्वान् दंडी स्वामी रहते हैं। उसने जाकर उनका दरवाजा खटखटाया।

भीतर से प्रश्न हुआ—तुम कौन हो ? स्वामी दयानन्द ने उत्तर दिया कि यही जानने तो आया हूँ कि मैं कौन हूं ?

द्वार खुल गया, शिक्षा आरम्भ हुई। योग्य शिष्य पाकर नेत्रहीन गुरु को प्रकाश मिल गया। गुरु के चरणों में बैठकर स्वामी दयानन्द ने सच्चा ज्ञान पाया। ज्ञान-अज्ञान का भेद समझा, धर्म-अधर्म का रहस्य जाना।

गुरु दक्षिणा का दिन आया। लौंग लेकर स्वामी दयानन्द गुरु-चरणों में उपस्थित हुए। गुरु ने पूछा, दयानन्द क्या लाये हो ? दयानन्द बोले—"थोड़े से लौंग लाया हूँ गुरुदेव !"

स्वामी विरजानन्द बोले, वत्स ! मुझे तुमसे गुरु दक्षिणा में लौंग नहीं चाहिए। मैं तुमसे तुम्हारा जीवन मांगता हूँ। संसार वेदों को भूल चुका है, चारों ओर अज्ञान छाया है। दयानन्द जाओ, अपने पूरे बल से वेदों का प्रकाश फैलाओ। अज्ञान का अंधेरा मिटाने के लिए तुम्हें अपना सारा जीवन भी लगाना पड़े तो लगा देना दयानन्द !

दयानन्द का मस्तक गुरु के चरणों में झुक गया। आंखों से आंसू बह निकले और वह बोले—गुरुदेव ! दयानन्द अपने प्राण देकर भी 'वेद' ज्योति फैलाएगा। आपने जो ज्ञान दिया है उस ज्ञान को संसार के प्रत्येक व्यक्ति तक पहुंचाने का मैं व्रत लेता हूँ।

इतिहास साक्षी है कि दयानन्द ने तपस्या और साधना से गुरु के समक्ष की गई प्रतिज्ञा पूर्ण की और अपने प्राण देकर वह ज्योति जलायी कि धरती का अंधेरा भाग गया।

……और हुआ संसार का भाग्योदय
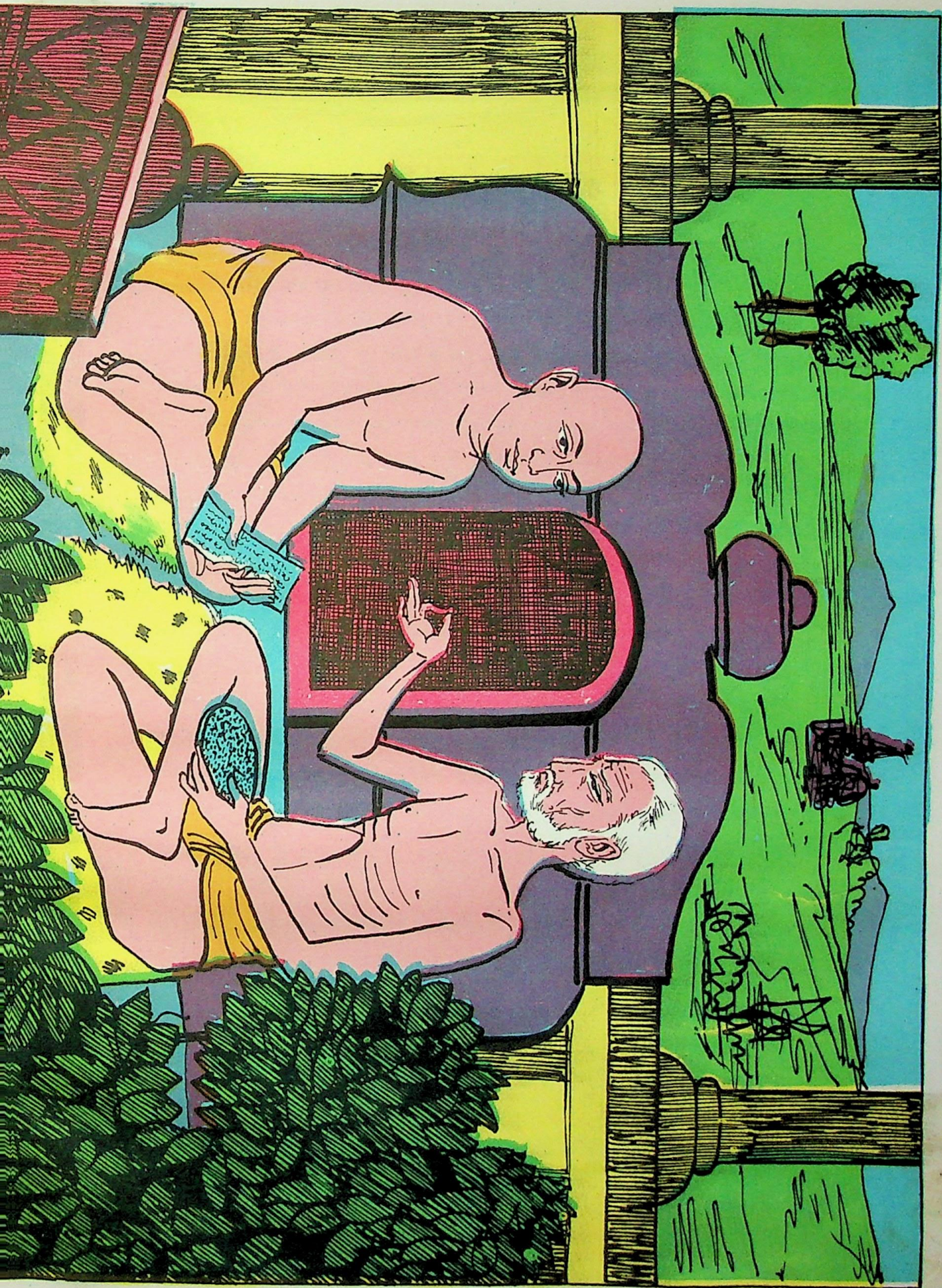
गोरक्षा का प्रयत्न

अजमेर में स्वामी जी एक दिन जब स्वामी जी बंसीलाल जी की वाटिका में पं० विरधीचन्द्र को महाभाष्य पढ़ा रहे थे, राजपूताना के गवर्नर जनरल एजेन्ट कर्नल ब्रुक भी उधर आ निकले। स्वामी जी को देखते ही वह उनके तेजस्वी व्यक्तित्व से प्रभावित हुए बिना न रह सके। किसी चुम्बकीय आकर्षण के तुल्य वह स्वामी जी की ओर आकृष्ट हो गये और उनके पास पहुँच कर सम्मान प्रदर्शनार्थ अपनी टोपी उतारी और शिष्टाचार की ब्रिटिश पद्धति का अनुसरण करते हुए स्वामी जी से हाथ मिलाया। तदुपरान्त वह स्वामी जी के समक्ष एक कुर्सी पर बैठ गये। दोनों में कुछ देर तक वार्तालाप हुआ। उससे कर्नल ब्रुक इतने अधिक प्रभावित हुए कि अगले दिन उन्होंने स्वामी जी को अपने निवास स्थान पर पधारने का निमन्त्रण दिया।

अगले दिन कर्नल ब्रुक ने अपनी गाड़ी स्वामी जी को लिवा लाने के लिए भेजी। महर्षि पं० रूपलाल जोशी के साथ उस गाड़ी में सवार होकर कर्नल महोदय के निवास स्थान पर पहुँचे। महर्षि दयानन्द से लगभग पौन घंटे तक हुए वार्तालाप में इस ब्रिटिश अधिकारी ने भी गोरक्षा का महत्व और लाभ स्वीकार कर लिया। जब स्वामी जी ने उससे गोहत्या पर प्रतिबन्ध लगवाने का अनुरोध किया तो वह बोले "स्वामी जी ! गोहत्या पर प्रतिबन्ध लगाना मेरे अधिकार की बात नहीं। आप इस सम्बन्ध में गवर्नर जनरल महोदय से भेंट कीजिये। स्वामी जी को आपने एक पत्र भी गवर्नर जनरल के नाम लिख कर दिया।

महर्षि दयानन्द ने जीवन पर अपनी पूर्ण शक्ति से गो-रक्षा के लिए प्रयत्न किए—
गो करुणानिधि नामक पुस्तक लिखकर अपने गो-रक्षा का आर्थिक महत्व प्रसारित किया—

धन्य थे स्वामी दयानन्द
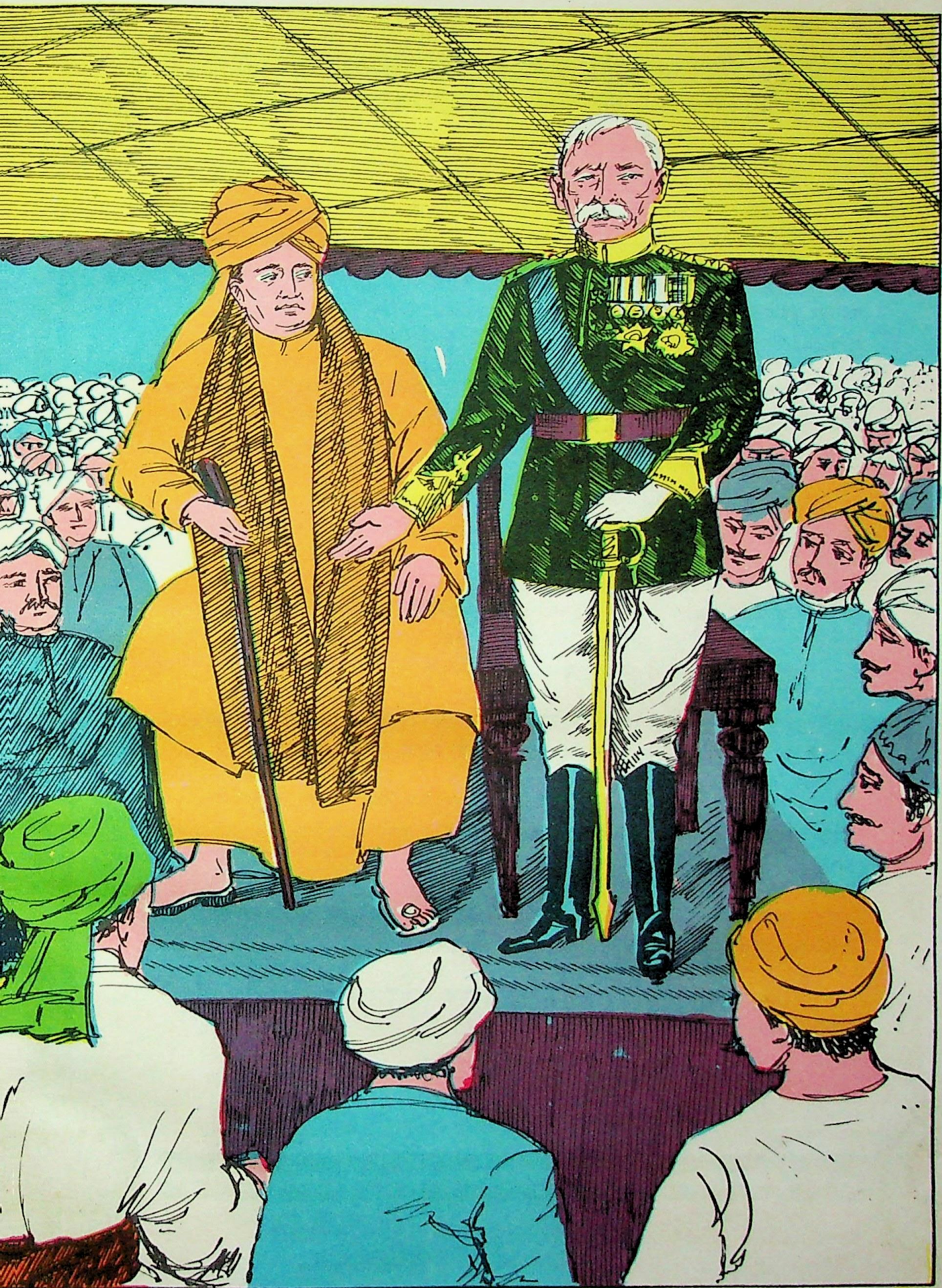
कुम्भ में पाखंड—खंडिनी पताका

शिक्षा पूर्ण कर स्वामी दयानन्द गुरु का आदेश पूर्ण करने कर्म क्षेत्र में निकले। उन्होंने चारों ओर अज्ञान को देखा। अंधविश्वासों की आंधी में सभी कुछ बिगड़ता पाया। वेद का नाम था, पर वेद नहीं थे। धर्म का घोष था पर धर्म के स्थान पर अधम छाया था।

पुण्य के नाम पर पाप का चारों ओर बोल बाला था तभी उन्हें पता लगा कि हरिद्वार में कुम्भ का मेला हो रहा है। वे भी मेले में पहुंचे और वहीं पाखंडखिडनी पताका फहरा दी।

मेले में हलचल मच गयी। तर्क के तीरों से पाखंड कांपने लगा। धर्म के प्रकाश से अधर्म भागने लगा। बड़े-बड़े पाखंडियों के आसन हिल गए। चारों ओर भगदड़ मच गयी।

सत्य का प्रचार भारत की जनता ने पहली वार सुना। हजारों वर्षों के बाद धरती पर एक महापुरुष को धर्म का नाम लेने वालों ने देखा। ज्ञान का अमृत गंगा के जल के साथ बहने लगा तो हजारों के मन में नयी ज्योति जाग गयी।

पांखडी—धर्म के ठेकेदारों ने स्वामी दयानन्द को अपना शत्रु समझा पर सच्चे सत्य के पुजारियों ने उन्हें धर्म के रक्षक के रूप में देखकर आशा की किरण जाना।

स्वामी दयानन्द ने भी अपनी दूर दृष्टि से अनुभव किया कि काम बहुत बड़ा है। पापों का पर्वत हिमालय-सा ऊंचा है इसे मिटाने के लिए अभी और तप-त्याग-साधना-बल चाहिए।

बस वहीं सब कुछ स्वाहा कर दिया, दान दे दिया। एक लंगोट था और था दयानन्द। चल पड़ा हिमालय की ओर शक्ति प्राप्त करने, प्रभु से मिलने।

प्रभु के चरणों में बैठे तपस्वी दयानन्द कुछ समय बाद अजेय दयानन्द बन कार्य क्षेत्र में अवतीण हुए।

ॐ
पाखण्ड खण्डिनी
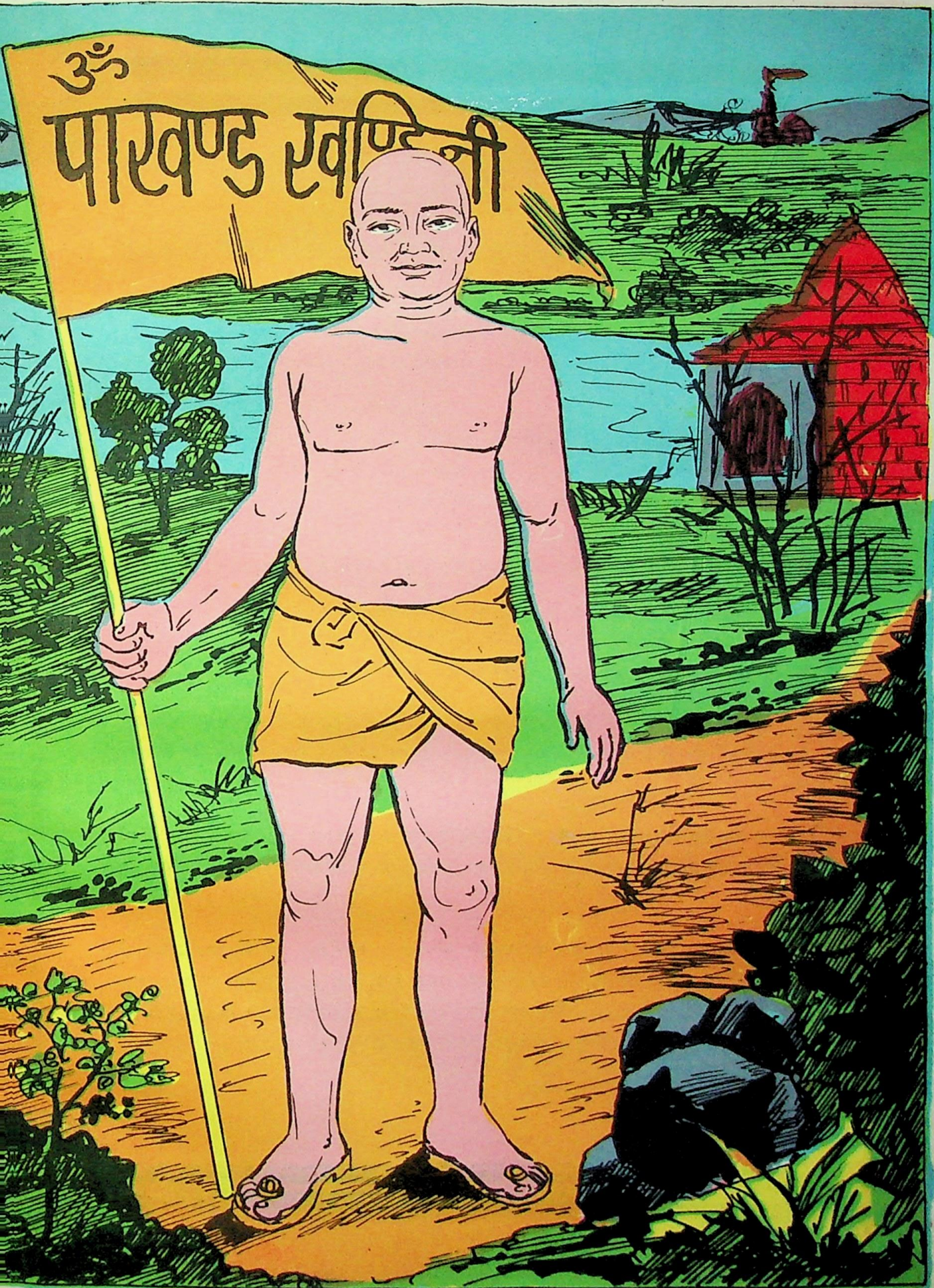
कैद से छुड़ाने आया हूँ

कठिन तपस्या, साधना और समाधि स्थिति में प्रभु का साक्षात्कार कर स्वामी दयानन्द भारत को पुनः जगाने के महान् कार्य में लग गए।

पोप-पादरी-मुल्ला-पाखंडियों को ललकारते हुए दयानन्द विजय के डंके बजाते हुए बढ़ते गए। चारों ओर हर्ष छा गया। राम कृष्ण के अनुयायियों ने अनुभव किया कि उनका रक्षक आ पहुंचा।

सत्य के प्रबल प्रसार से असत्य के अनुयायी स्वामी जी के शत्रु बन गए। एक पाखंडी ने अनूपशहर में उन्हें पान में विष दिया। स्वामी जी को पता लग गया तो योग बल से उन्होंने विष के प्रभाव को दूर कर दिया।

उनके भक्त तहसीलदार को घटना का ज्ञान हुआ तो उसने विष देने वाले को बन्दीगृह में डाल दिया और फिर स्वामी जी की सेवा में उपस्थित हुआ।

स्वामी जी प्रसन्न होने के स्थान पर तहसीलदार को फटकारते हुए बोले—"तुमने यह क्या किया ? मैं संसार को कैद कराने नहीं, कैद से छुड़ाने आया हूं। यदि दुष्ट अपनी दुष्टता नहीं छोड़ता तो हम अपनी सज्जनता कैसे छोड़ दें ?"

सभी उपस्थित व्यक्ति स्वामी जी के वचन सुन रोमांचित हो गए। तहसीलदार ने विषदाता को छोड़ दिया, और हजारों व्यक्ति इस घटना के बाद स्वामी जी के भक्त बन गए।

कितना महान् था दयानन्द; कितना उदार था, कितना प्यार था उनमें, अपने विषदाता पर भी उन्हें क्रोध नहीं था। स्वामी दयानन्द के जीवन में ऐसी अनेक घटनाएं मिलती हैं।

स्वामी दयानन्द ने सत्य की साधना की थी। इसी सत्य के बल पर वे बड़ी से बड़ी आपत्तियों से जूझते रहे। विजय सदा उनके साथ रही। परमात्मा के अमर ज्ञान 'वेद' के प्रसारक दयानन्द ने सर्वत्र सत्य का प्रचार किया। उन्होंने स्वप्न में भी कभी एक पल के लिए सत्य को नहीं छोड़ा। यही उनकी सफलता का मूल मंत्र था।
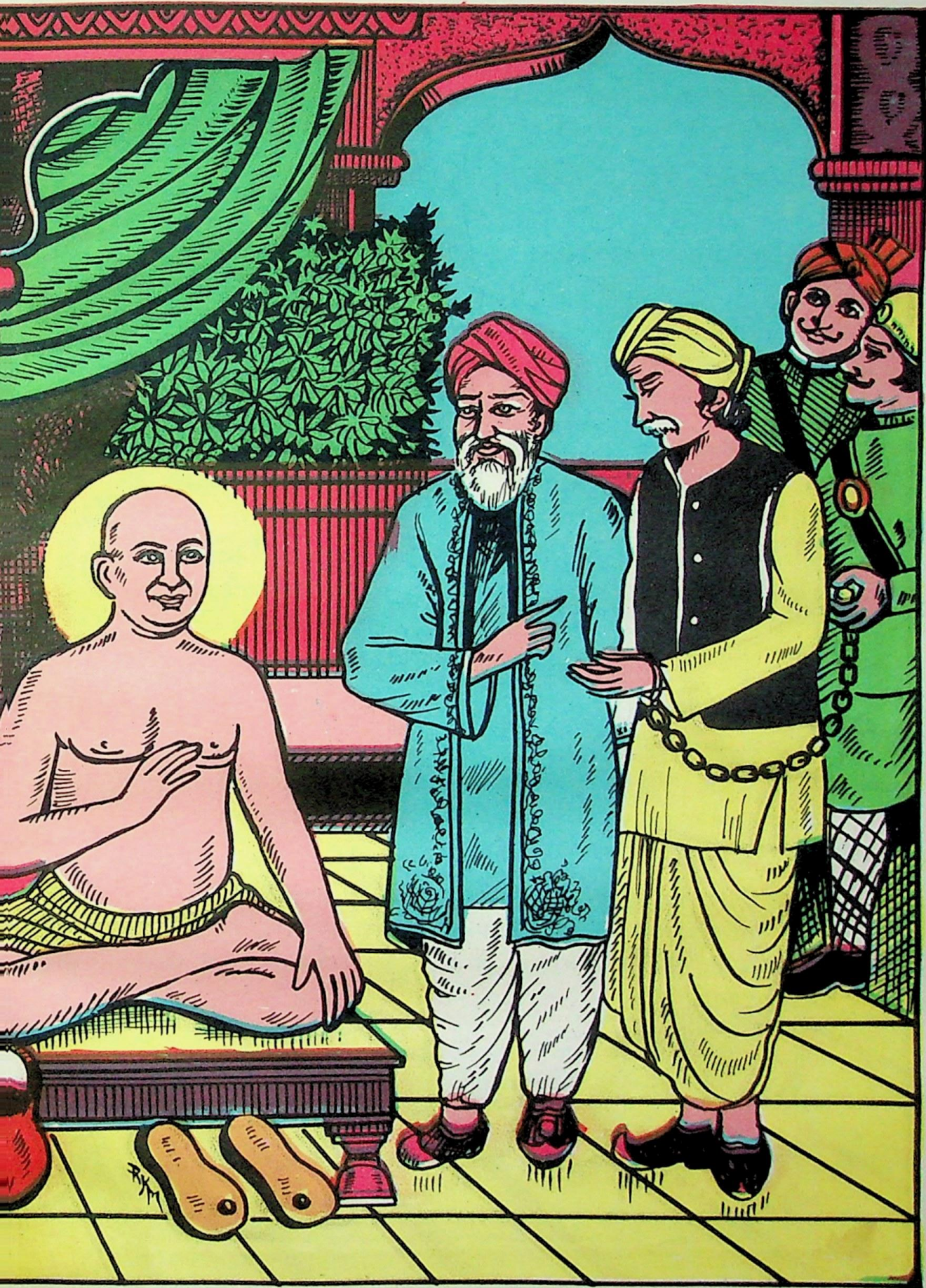
काशी शास्त्रार्थ : अपूर्व विजय

वेद प्रचार के कार्य में स्वामी दयानन्द ने अनुभव किया कि काशी पाखंडों का गढ़ है। जब तक वहाँ सत्य का प्रकाश नहीं होगा, तब तक देश में ज्ञान नहीं फैलेगा।

अकेले स्वामी दयानन्द काशी के गढ़ को विजय करने पहुंच गए। पंडित मंडली में खलबली मच गयी। स्वामी जी के व्याख्यान होने लगे। जनता के मस्तिष्क पर पड़ा अज्ञान का परदा अपने आप हटने लगा।

किन्तु जिन्होंने अज्ञान को ही ज्ञान समझ रखा था वे ज्ञान का प्रकाश कैसे सहन कर सकते थे ? स्वामी दयानन्द की सिंह गर्जना से कांपती पंडित मंडली को शास्त्रार्थ की चुनौती स्वीकार करनी पड़ी।

एक ओर अकेला दयानन्द सत्य का अजेय अस्त्र लिये था, दूसरी ओर काशी की सारी पंडित मंडली भौतिक साधनों से सजी खड़ी थी। राज्य बल उनके साथ था। काशी नरेश पंडितों की पीठ पर थे। और दयानन्द के साथ था परमात्मा का आशीर्वाद।

शास्त्रार्थ हुआ, डटकर हुआ, पंडितों ने अनुभव किया, दयानन्द साधारण पंडित नहीं है। वह तो वेद-वेदांग-शास्त्र-व्याकरण का सागर है। उसे कोई हरा नहीं सकता।

बस यह समझते ही वे चालाकी पर उतर आए और अपनी जय स्वयं बोलते सभा स्थल से उठकर चल दिए। षड्यन्त्र पहले से ही था। गालियाँ, ईंट-पत्थर-धूल-कागज-चप्पलें सभी की बौछार सत्य के प्रसारक दयानन्द पर की गयीं। पर उनके मुख पर न घबराहट थी, न चिन्ता।

वे मुस्कराते रहे, धैर्य से सब कुछ सहते रहे। समाचारपत्रों, और विवेकी जनों ने अनुभव किया स्वामी दयानन्द के जयी विचारों को और काशी की जनता हृदय से स्वामी दयानन्द, की जय-जयकार कर उठी। और बाद में स्वयं काशी नरेश को भी स्वामी जी की महत्ता स्वीकार करनी पड़ी।

भारत के इतिहास को नया मोड़ देने में,
काशी शास्त्रार्थ इतिहास में सदा रहेगा—
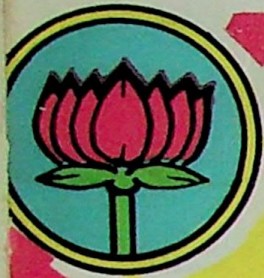
वेद प्रचारक

काशी में वेद और सत्य की ध्वजा फहराकर स्वामी दयानन्द ने सारे देश में भ्रमण किया। वे जहाँ भी गये वहीं उन्होंने 'वेद' का प्रचार किया।

सैकड़ों वर्षों के पश्चात् 'वेद' ज्ञान को सत्य रूप में उपस्थित करने का, वेद ही ईश्वर का ज्ञान है, यह प्रचारित करने का श्रेय एक मात्र स्वामी दयानन्द को दिया जा सकता है।

स्वामी जी ने बताया कि कुरान, बाइबिल, पुराण में जो लिखा है वह धर्म नहीं है। धर्म तो सब समय में, सब देशों में एक-सा ही रहता है।

सच्चा धर्म ज्ञान सृष्टि के आरम्भ में परमात्मा ने ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद के रूप में मानव मात्र के कल्याण के लिए दिया था।

स्वामी जी ने कहा कि जब से संसार 'वेदों' को भूला है तभी से यहाँ दुःख अज्ञान फैला है। मनुष्य को मनुष्य बनकर रहने की शिक्षा केवल 'वेद' ही देता है।

'वेद' के मंत्रों की पावन ध्वनि जब स्वामी जी के मुख से गूँजती थी तब सुनने वाले समझते थे कि अमृत बरस रहा है। अंधेरा मिट रहा है। 'वेद' ही धर्म है यह सत्य स्वामी जी ने सभी को बताया और इसी का सर्वत्र प्रचार कर कहा कि—

'वेद' सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। 'वेद' का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

स्वामी जी की इस घोषणा ने असत्य के उपासकों को हिला दिया। अज्ञान के दुर्ग कांप गए। और परमात्मा की वाणी के नाम पर जितने भी मनुष्य जाति को बहकाने वाले ग्रंथ थे, उन सबकी वास्तविकता प्रगट हो गयी और चारों ओर गूंज उठी ध्वनि—

"वैदिक धर्म की जय"

यदि दयानन्द वेद के सत्य अर्थों का प्रचार न करते तो संसार का क्या होता, इसकी कल्पना करते भी भय लगता है।

ठंड नहीं लगती

शुक्लपक्ष का चन्द्रमा विमल व्योम में अपनी चन्द्रिका छिटका रहा था। शीत अपना साम्राज्य जमाये हुए था। ऊपर से चन्द्रमा शीतलता की वृष्टि कर रहा था तो नीचे गंगा की रेती शीत उगल रही थी। ऐसी शीत रात्रि में महर्षि दयानन्द कर्णवास में गंगा के दूसरे तट पर गंगा की सिकता पर आसन लगाये हुए समाधिस्थ थे। इसी समय दो अंग्रेज आखेट के लिए उधर आ निकले। एक तो उसमें बदायूँ का कलेक्टर था और दूसरा उसका मित्र पादरी था। वे दोनों उस संन्यासी को कोपीन मात्र धारण किये गंगा की ठंडी बालुका में बैठा देखकर आश्चर्य में निमग्न हो गये और बहुत देर तक टकटकी लगाये उनकी ओर देखते रहे। जब ऋषि ने आँखें खोलीं तो कलेक्टर महोदय कहने लगे—"हमें बड़ा आश्चर्य है कि आप गंगा के तट पर ठंडी बालुका पर रात्रि के समय केवल एक लंगोट लगाये हुए ऐसे शीत में बैठे हैं। क्या आप को सर्दी नहीं लगती ?" स्वामीजी उत्तर देने लगे थे कि उनका पादरी मित्र बोल उठा—'ये अण्डे और मांस आदि पौष्टिक पदार्थ खा-खाकर मुटा गये हैं इन्हें जाड़ा कैसे लग सकता है ?" स्वामीजी ने हँस कर कहा—"हम दाल-रोटी के खाने वाले क्या माल खा सकते हैं। बहुत जोर लगाया तो दूध पी लिया। माल तो आप खाते हैं, मांस और अण्डे उड़ाते हैं, मदिरा भी पी जाते हैं। यदि शीत का लगना न लगना मांस अण्डे खाने पर ही निर्भर है, तो आइये, वस्त्र उतार कर थोड़ी देर मेरे साथ बैठ जाइये।" महर्षि के ऐसा कहने पर वह लज्जित हो गया और विषय बदल कर कहने लगा—"अच्छा तो तुम को शीत न लगने का क्या कारण है ?" स्वामीजी ने कहा—"इसका मुख्य कारण अभ्यास है। आप का मुँह सदा खुला रहता है, इसीलिए उसे ढकने की इस समय भी आपको आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।" कलेक्टर ने अपने मित्र को आगे कुछ कहने से रोक दिया और वे दोनों नमस्कार करके चल दिये।

गंगा के तट पर शीत में तपस्या करते कोपीन धारी दयानन्द को देख अंग्रेज कलेक्टर ने पूछा कि आपके शरीरको ठंड नहीं लगती। स्वामीजी ने कहा, तुम्हारे मुंह को क्यों नहीं लगती ? यह सब अभ्यास की महिमा है।

ब्रह्मचर्य का बल

स्वामी दयानन्द बाल ब्रह्मचारी थे। उनका जीवन ब्रह्मचर्य के तेज से चमकता था। जालन्धर (पंजाब) में एक दिन सरदार विक्रमसिंह ने जब ब्रह्मचर्य की महिमा पर स्वामी जी का भाषण सुना तो बोले—आप भी तो ब्रह्मचारी हैं। हमें तो आप में कोई विशेष बल प्रतीत नहीं होता।

उस समय स्वामी जी मौन रहे। किन्तु जब विक्रमसिंह अपनी दो घोड़ों की बग्घी में सवार होकर चले तो घोड़े टस से मस नहीं हुए। कोचवान ने बहुत कोड़े मारे पर घोड़े आगे न बढ़ पाए!

सरदार विक्रमसिंह ने जब पीछे मुड़कर देखा तो पता चला कि स्वामी दयानन्द ने पहिया पकड़ा हुआ है। स्वामी जी ने पहिया छोड़ दिया और बोले कि आपको ब्रह्मचर्य के बल का प्रमाण मिला या नहीं? सरदार विक्रमसिंह लज्जित हुए और उन्होंने स्वामी जी के चरण पकड़ लिए।

स्वामी जी का शरीर बल का भंडार था। अकेले ही रीछ को डंडे से भगाना, सांड को हाथों से ढकेलना, अनेक शत्रुओं के छक्के छुड़ाना, स्वामी जी जीवन के प्रेरक प्रसंग हैं। स्वामी जी में जहाँ आत्मिक बल था, वहाँ वे शारीरिक बल के भी भंडार थे। यही कारण है कि अनेकों बार विष दिए जाने पर भी उन का शरीर सब कुछ सहन कर सका।

तूफान, आंधी और भयंकर संकटों में भी अडिग स्वामी दयानन्द का सारा जीवन शक्ति और शौर्य का उज्ज्वल उदाहरण है। आज भी हम उन के जीवन से प्रेरणा लेकर असत्य से टकराने का साहस मन में भर सकते हैं।

वे प्रत्येक दृष्टि से बली थे। संसार की सारी आसुरी शक्तियों को अकेले ललकारना। स्वामी जी के आत्म बल का अनुपम उदाहरण है। वे कभी असत्य के सम्मुख झुके नहीं, कभी भी उन्होंने हार मानी नहीं, वे सदा विजयी रहे और मुस्कराते रहे।
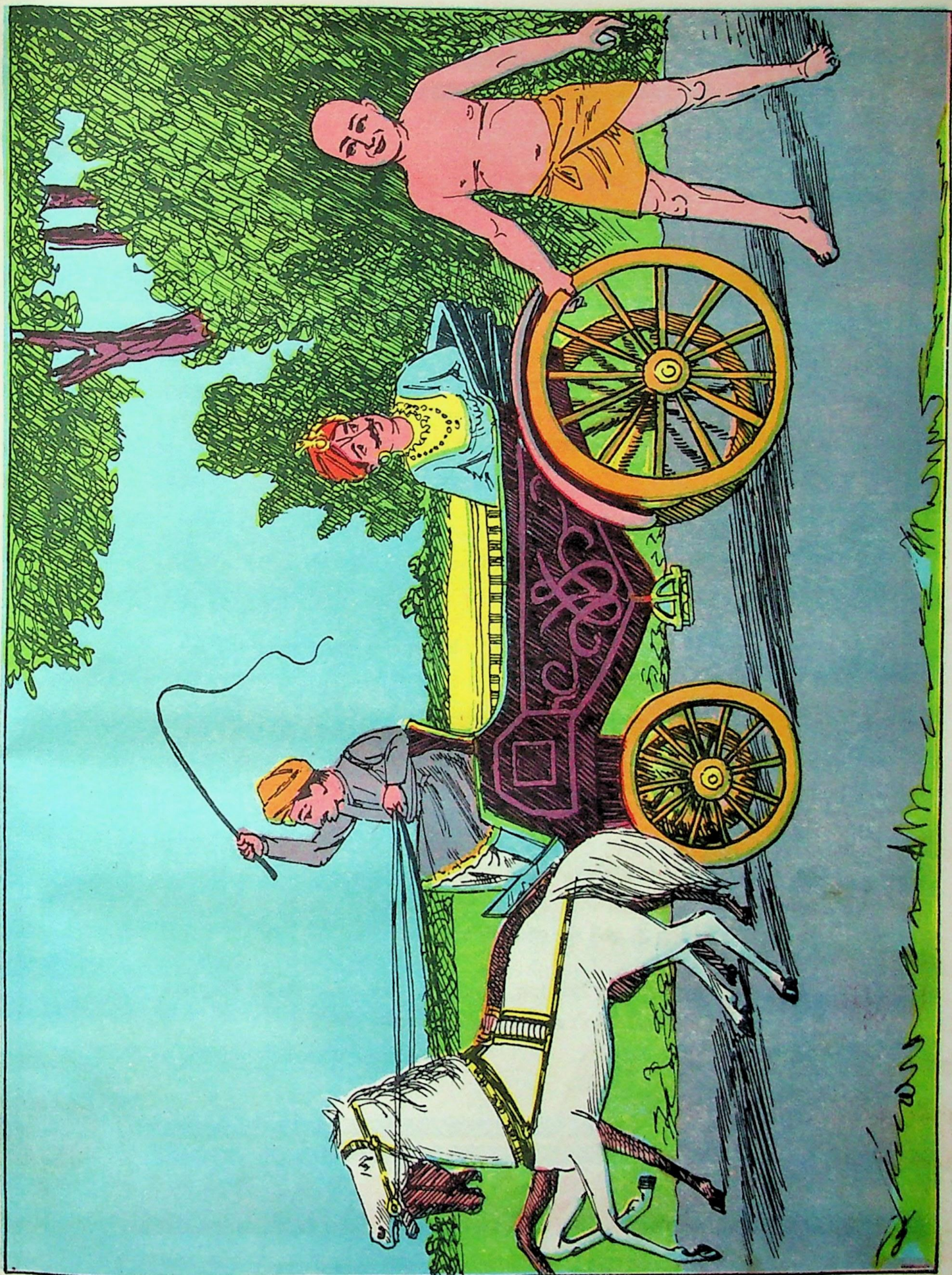
तलवार के टुकड़े

वेद प्रचार करते हुए स्वामी दयानन्द कर्णवास पधारे। यहाँ का राव कर्णसिंह महाभिमानी और बिगड़ा हुआ व्यक्ति था।

कुरीतियों और पाखंडों का खंडन स्वामी जी पूरे बल से करते थे। राव कर्णसिंह ने जब स्वामी जी द्वारा रास लीलाओं के खंडन की बात सुनी तो क्रोध में भर कर स्वामी जी के पास पहुँचा और व्यर्थ की बकवास करने लगा। स्वामी जी की खरी-खरी सुनकर वह आपे से बाहर हो गया और उसने भीषण रूप धारण कर स्वामी जी पर तलवार का प्रहार किया।

स्वामी जी ने बायें हाथ से उसे धकेल कर तलवार भूमि पर टेक दी। तलवार के दो टुकड़े हो गए। राव महाशय भय से थर-थर कांपने लगे। उन का मुँह पीला पड़ गया।

स्वामी जी बोले—मैं संन्यासी हूँ, क्रोध में आकर या तुम्हारे व्यवहार से रुष्ट हो कर तुम्हारा अहित नहीं करूँगा। जाओ, अपना काम करो।

काँपता हुआ कर्णसिंह वहाँ से चला गया, पर इस घटना की चर्चा सारे क्षेत्र में फैल गयी। लोग स्वामी जी के ज्ञान से तो पहले ही प्रभावित थे। इस घटना के बाद उन्हें सिद्ध पुरुष मानने लगे।

किन्तु स्वामी जी पर घटना का तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ा। वे पहले की ही भांति अपने प्रचार कार्य में लगे रहे। जहाँ भी वे जाते थे, उन का यश उन से पहले ही पहुँच जाता था। इसी भांति अनेक बार दुष्ट प्रवृत्ति के लोगों ने स्वामी जी के प्राण लेने की चेष्टा की पर सदा ही उन्हें मुंह की खानी पड़ी।

उन्हें अनेकों बार विष दिया गया, उन्हें समाप्त करने के षड्यन्त्र रचे गये। किन्तु स्वामी जी ने सभी विरोधियों को अपने धैर्य शौर्य से परास्त कर दिया।
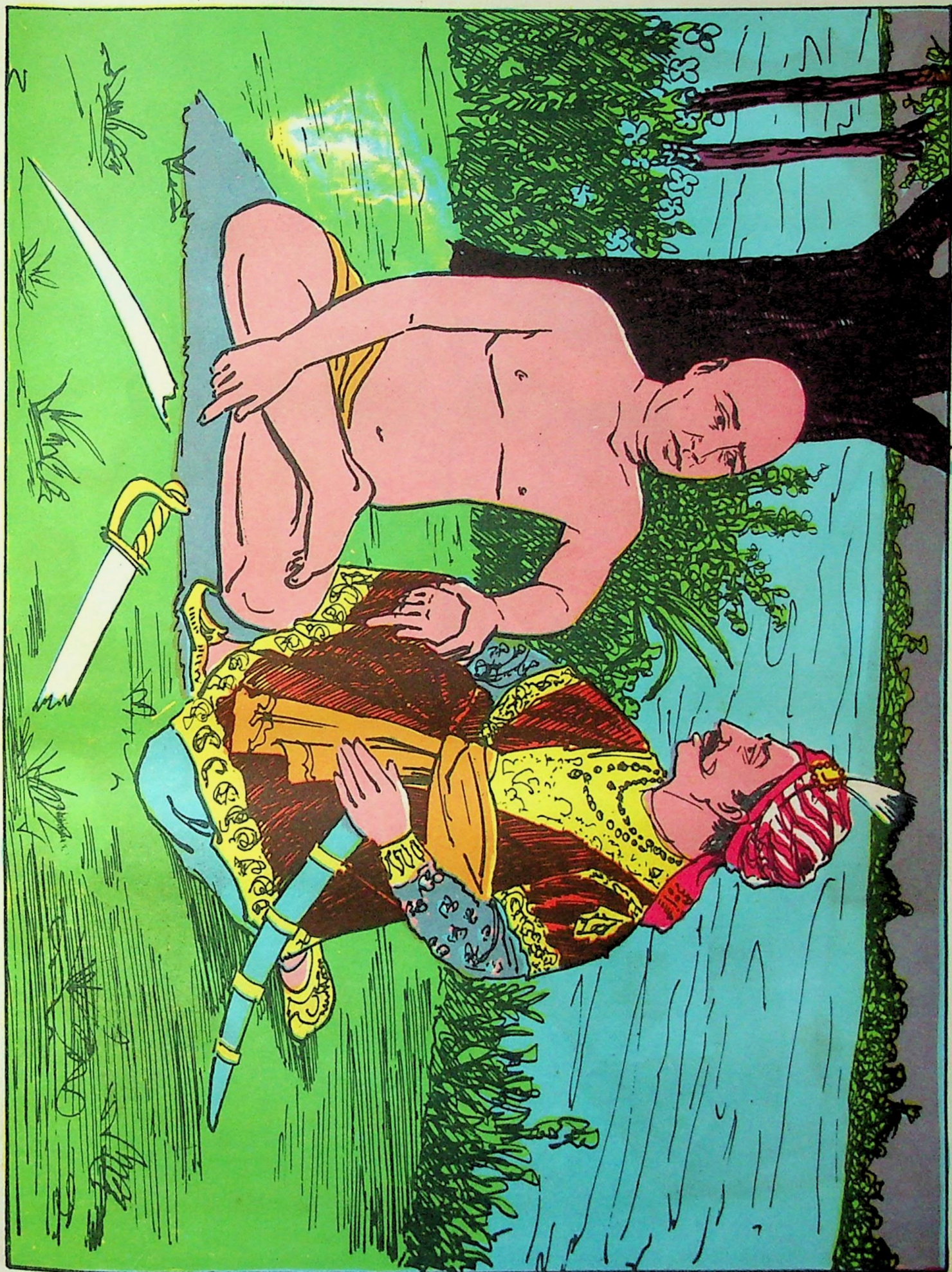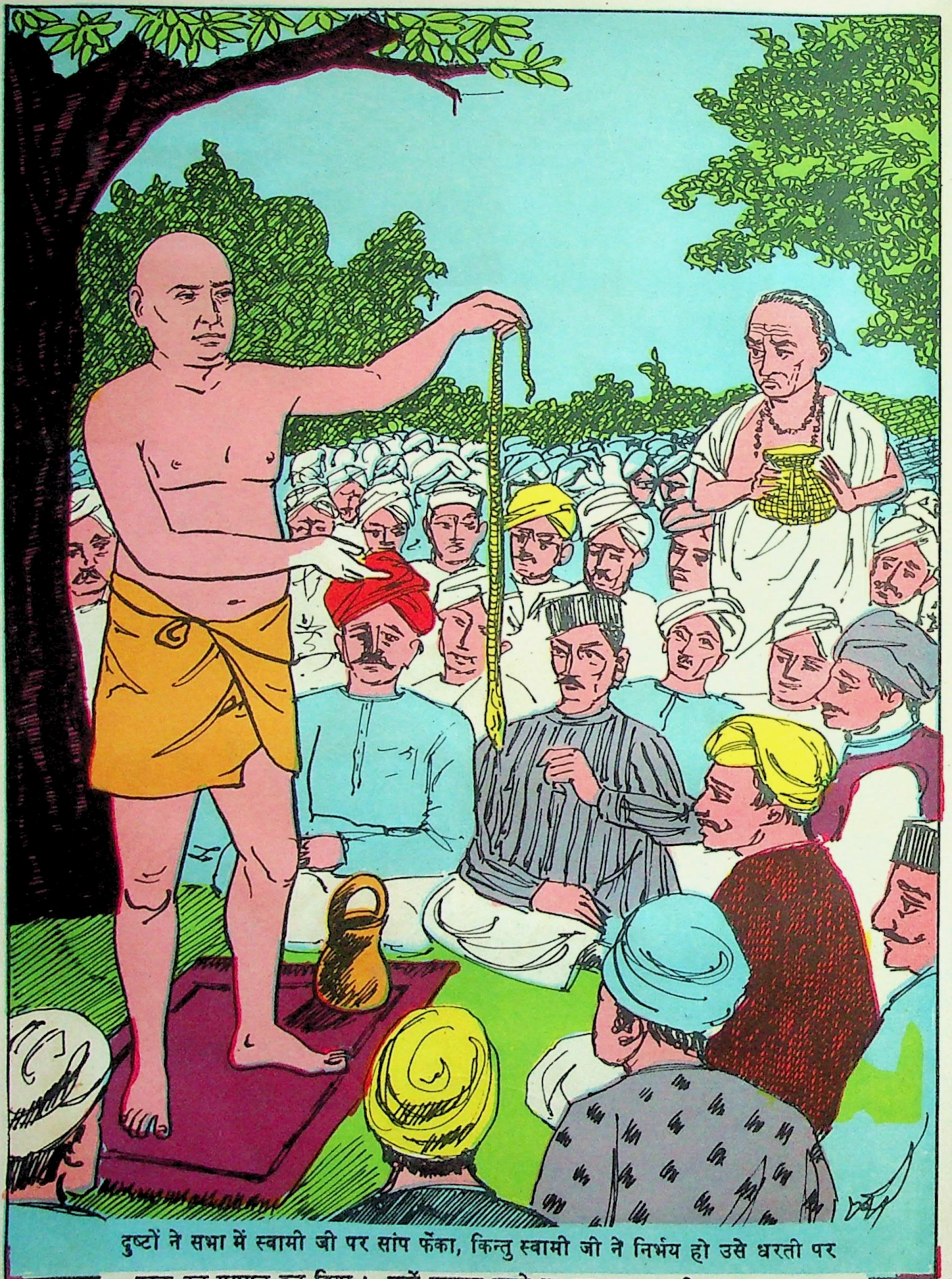
दुष्टों ने सभा में स्वामी जी पर सांप फेंका, किन्तु स्वामी जी ने निर्भय हो उसे धरती पर पटक कर समाप्त कर दिया। उन्हें समाप्त करने का यह षड़यन्त्र भी असफल हुआ।
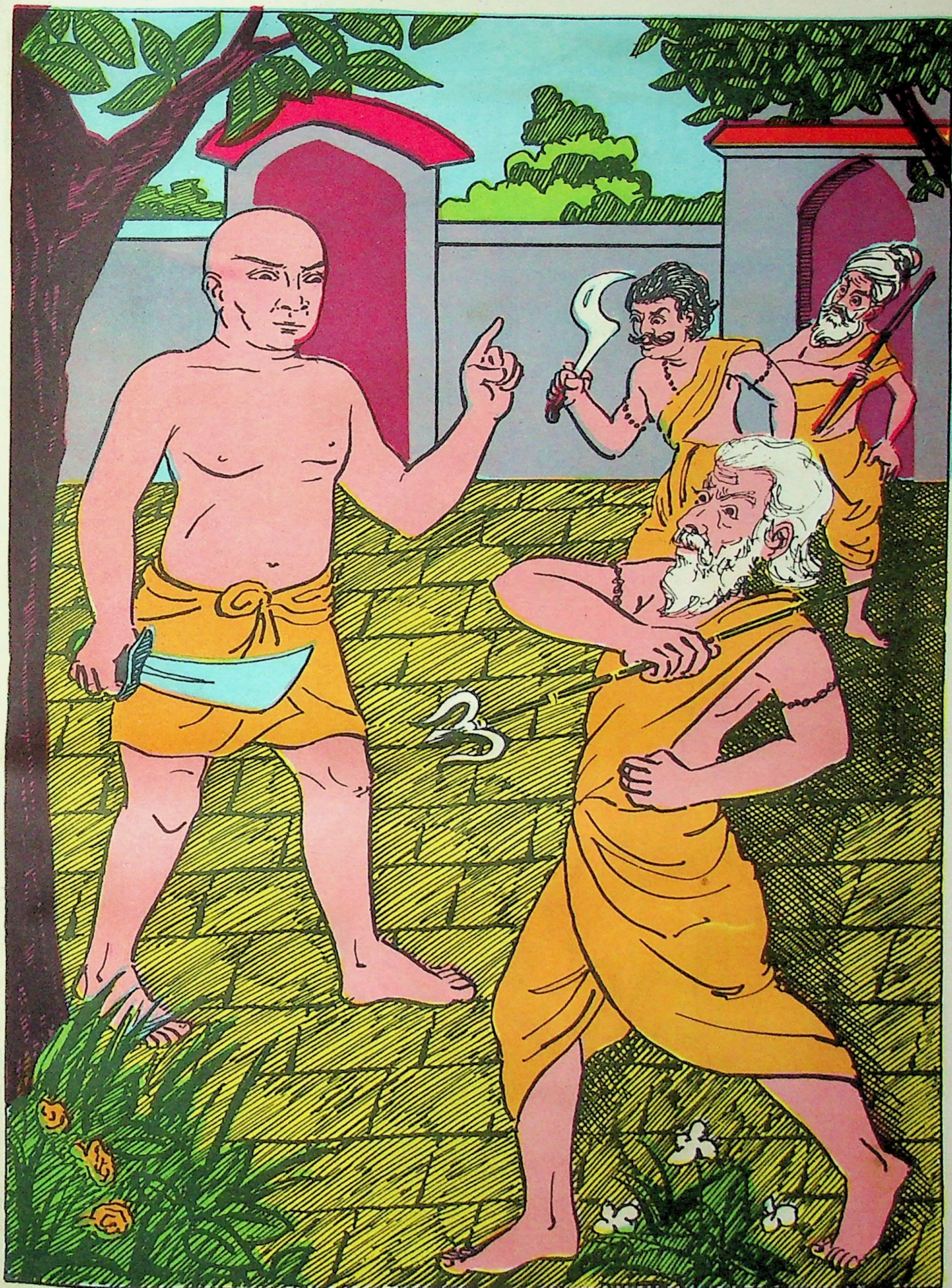
दुष्टों का अकेले सामना करते हुए ऋषि दयानन्द
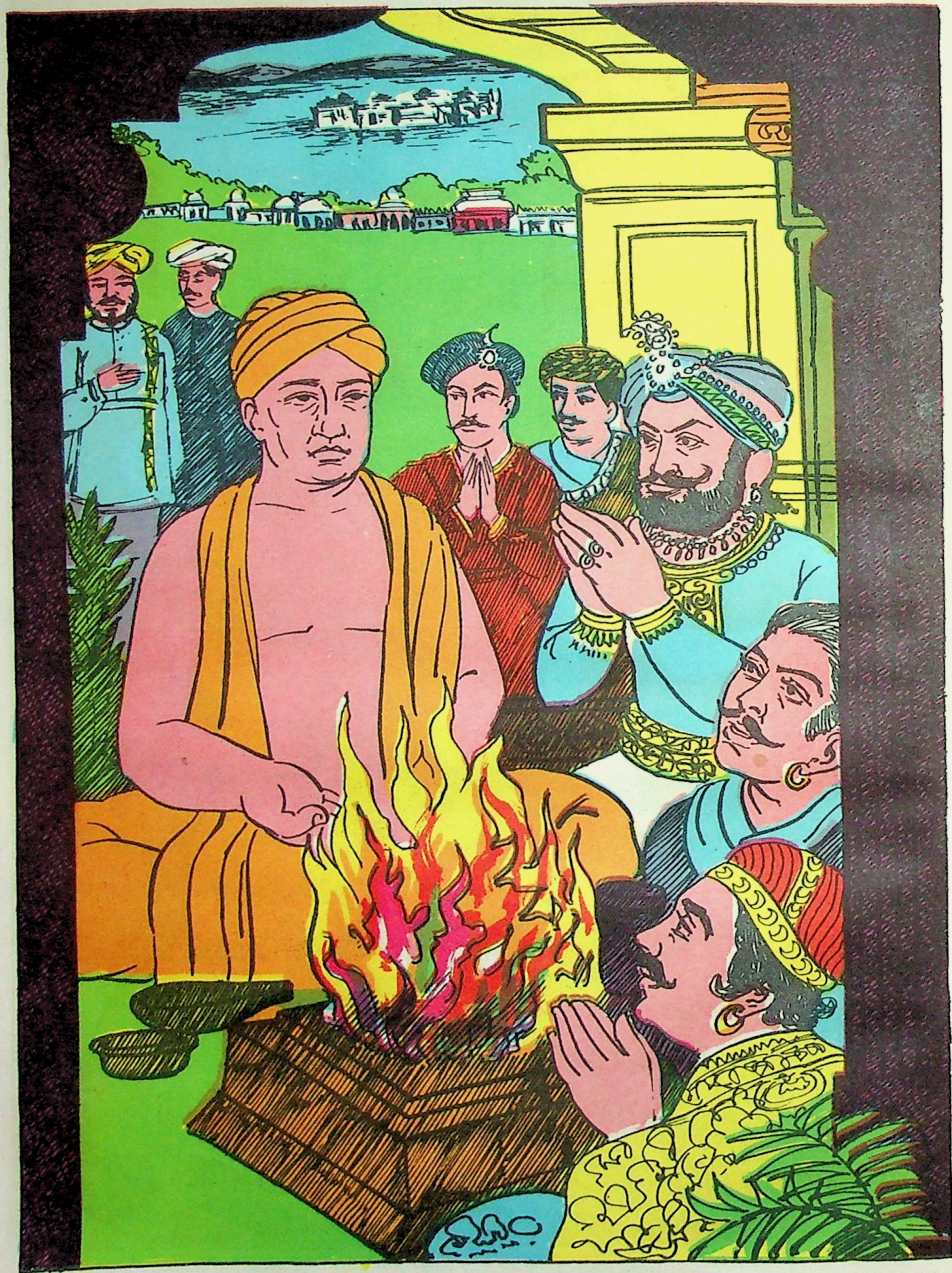
राजाओं का उपदेश देते हुए यज्ञ-वेदी पर
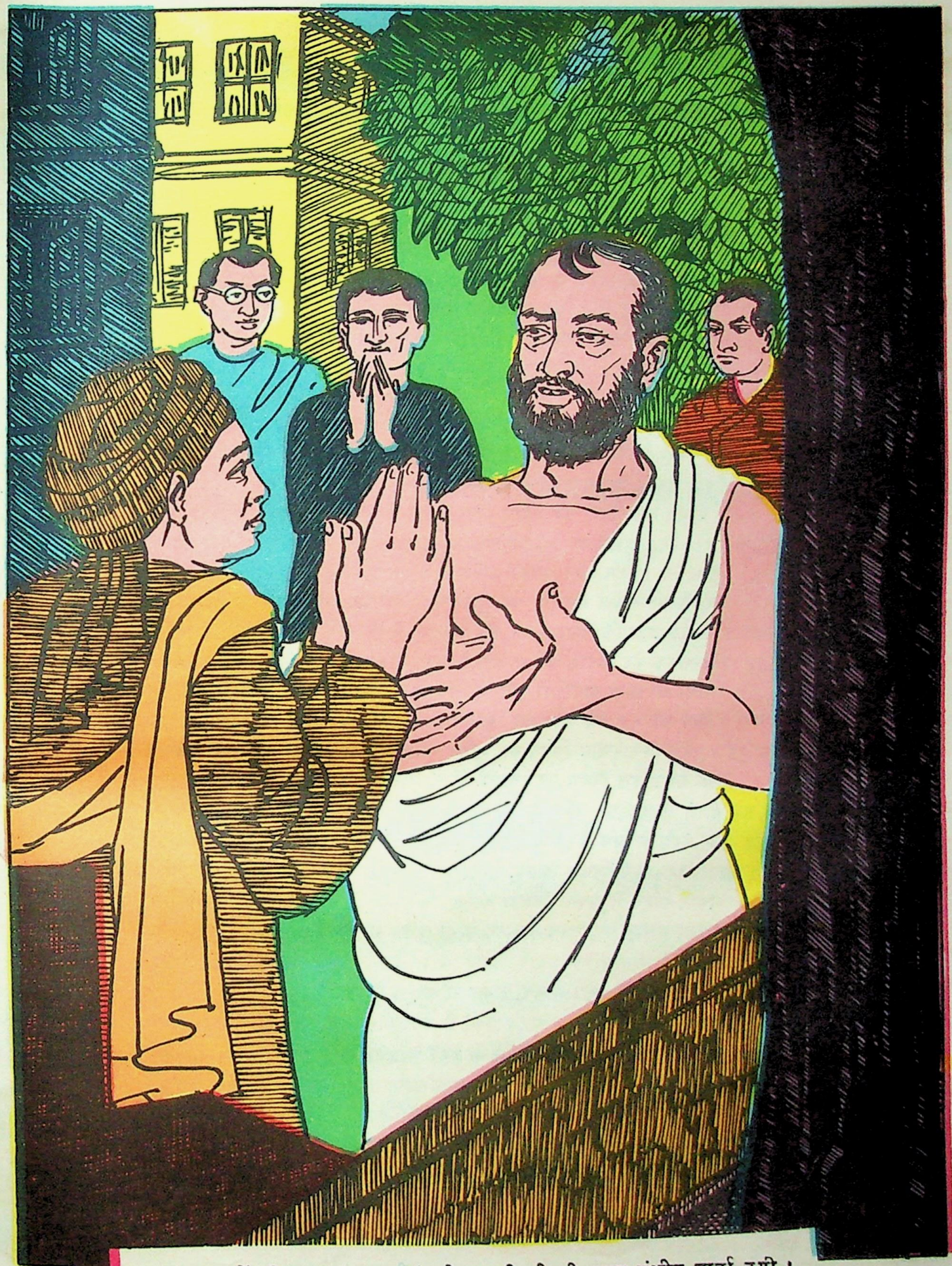
कलकत्ता में श्री रामकृष्ण परमहंस से स्वामी जी की गहन गंभीर वार्ता हुयी।
स्वामी विवेकानन्द दो महापुरुषों का यह अद्भुत मिलन देख रहें हैं।

मेला चांदपुर में........

दिल्ली दरबार की समाप्ति पर स्वामी जी दिल्ली से प्रस्थान कर मेरठ, सहारनपुर होते हुए चांदपुर के मेले में सम्मिलित हुए। इस मेले में मुंशी प्यारे लाल और मुक्ता प्रसाद के प्रयास से 'ब्रह्म विचार' की योजना बनी। इसमें सभी प्रमुख धर्मों के प्रतिनिधि आमंत्रित थे। मुसलमानों के प्रतिनिधि के रूप में देवबन्द से भारत विख्यात मौलवी मुहम्मद कासिम पधारे, तो ईसाइयों का प्रतिनिधित्व बरेली के पादरी श्री टी० जी० स्काट ने किया। वैदिक धर्म के सिद्धान्तों के निरूपण हेतु स्वामी दयानन्द भी आमन्त्रित थे।

१९-२० मार्च, १८७७ को आयोजित इस मेले के अवसर पर 'ब्रह्म विचार' के अन्तर्गत पाँच विषय विचारार्थ प्रस्तुत थे :—

(१) ईश्वर ने जगत् को किस वस्तु से, किस समय और किस अभिप्राय से रचा? (२) ईश्वर न्यायकारी एवं दयालु किस प्रकार है? (३) ईश्वर सर्वव्यापक है या नहीं? (४) वेद, बाइबिल और कुरान के ईश्वरीय ज्ञान होने के क्या कारण हैं? (५) मुक्ति का स्वरूप और उसकी प्राप्ति के साधन क्या हैं?

स्वामी जी ने इस अवसर पर उपस्थित धर्माधिकारियों एवं श्रोताओं को सम्बोधित करते हुए कहा कि विद्वानों का यह कर्त्तव्य है कि सत्य और असत्य का निर्णय करने हेतु पारिस्परिक वैर विरोध की भावना से मुक्त होकर संवाद, विचार विमर्श करें।

स्वामी जी द्वारा पादरियों और मौलवियों की शंका का संतोषजनक समाधान किया गया। दिन को ११ बजे सभा की कार्यवाही स्थगित हुई और दोपहर को पुनः आरम्भ हुई। इसमें विचारणीय विषय था 'मुक्ति का स्वरूप' व उसकी प्राप्ति के साधन।

सर्व प्रथम इस विषय पर स्वामी जी ने अपना मत व्यक्त करते हुए बताया कि सब सब दुःखों से छूट कर सच्चिदानन्द परमात्मा को प्राप्त कर सदा आनन्दित रहना और फिर जन्म मरण के चक्र में चिरकाल तक न पड़ने का नाम ही मुक्ति है। इसके साधन हैं, सत्याचरण, सत्य विद्या, सत्संग, योगाभ्यास, ईश्वर स्तुति और ईश्वर प्रार्थना।

पादरी साहब ने अपना विचार व्यक्त किया कि दुःखों से छूटने का नाम ही मुक्ति है और ईसा मसीह पर विश्वास करने से ही मुक्ति सम्भव है। मौलवी साहब का मत था कि प्रभु जिसे चाहे मुक्ति प्रदान करता है। पैगम्बर पर विश्वास रखने से ही अल्लाह प्रसन्न हो सकता है और मानव मुक्ति पा सकता है।

अन्त में स्वामी जी ने अकाट्य तर्कों से इन मान्यताओं का खंडन और अपनी मान्यता का मंडन किया। श्रोता स्वामी जी के तर्कों से प्रभावित हुए और वैदिक धर्म की श्रेष्ठता और सत्यता को उन्होंने स्वीकार कर महर्षि दयानन्द का जयघोष किया। ●

बाईबल
वेद
कुरान
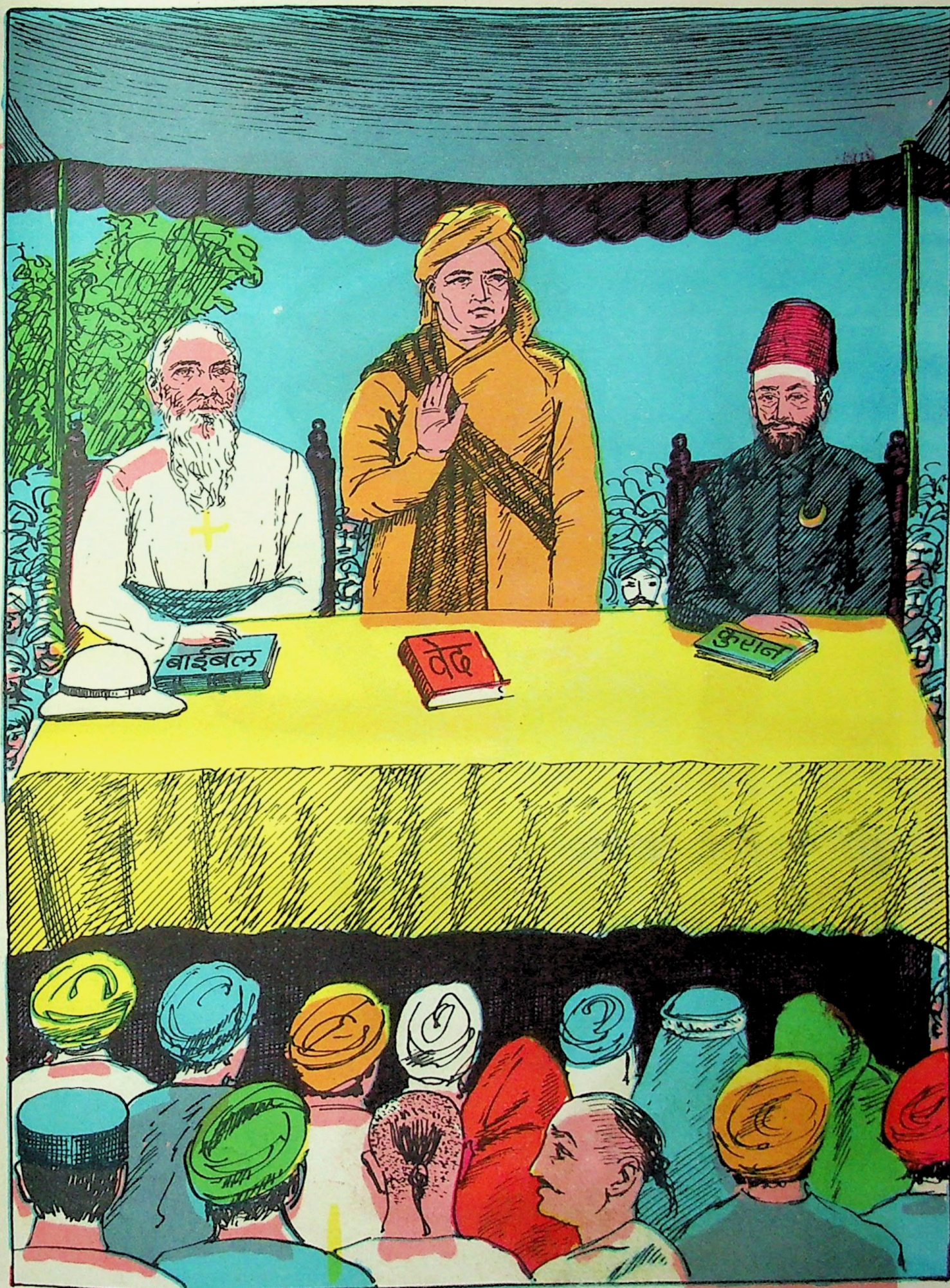
अमृतसर सभा में जनता को वेद सुधा पान कराते हुए ऋषि दयानन्द

ऋषि दयानन्द ने सभी मत वालों को समझाने का प्रयत्न किया कि—

सत्य एक है, धर्म एक है, उसी को सब माने और मनुष्य की बतायी राह छोड़कर परमात्मा के दिखाए मार्ग पर चलें, तभी सभी का कल्याण होगा।

राजपूत राजाओं को विलासिता के कीचड़
में पड़े देखकर ऋषि दयानन्द का हृदय
रोता था। उन्होंने इनके सुधार का
संकल्प लेकर राजस्थान की यात्राएँ
कीं और सत्य-तेज बल से
उनको जगाने का प्रयत्न करते रहे।

दयानन्द की भावना

जन मानस को समझाते थे,
सच्ची राह बताते सब को,
वेद-ज्ञान सिखलाते थे ।
भटकन छोड़ो, मत-पथ तोड़ो,

प्रभु की करनी को समझो सब,
अंधकार की काली छाया,
दूर भगा दो इस धरती से···
यही लक्ष्य था, यही चाह थी,

यही भाव था, ऋषि के मन में।
सब को एक राह पर लाना,
लक्ष्य एक था, जीवन धन का।
उन की बातें मधु पूरित थीं,

प्यार भरा था···दिव्य चाह थी।
सब का हो, कल्याण सदा ही,
दयानन्द का भाव यही था।
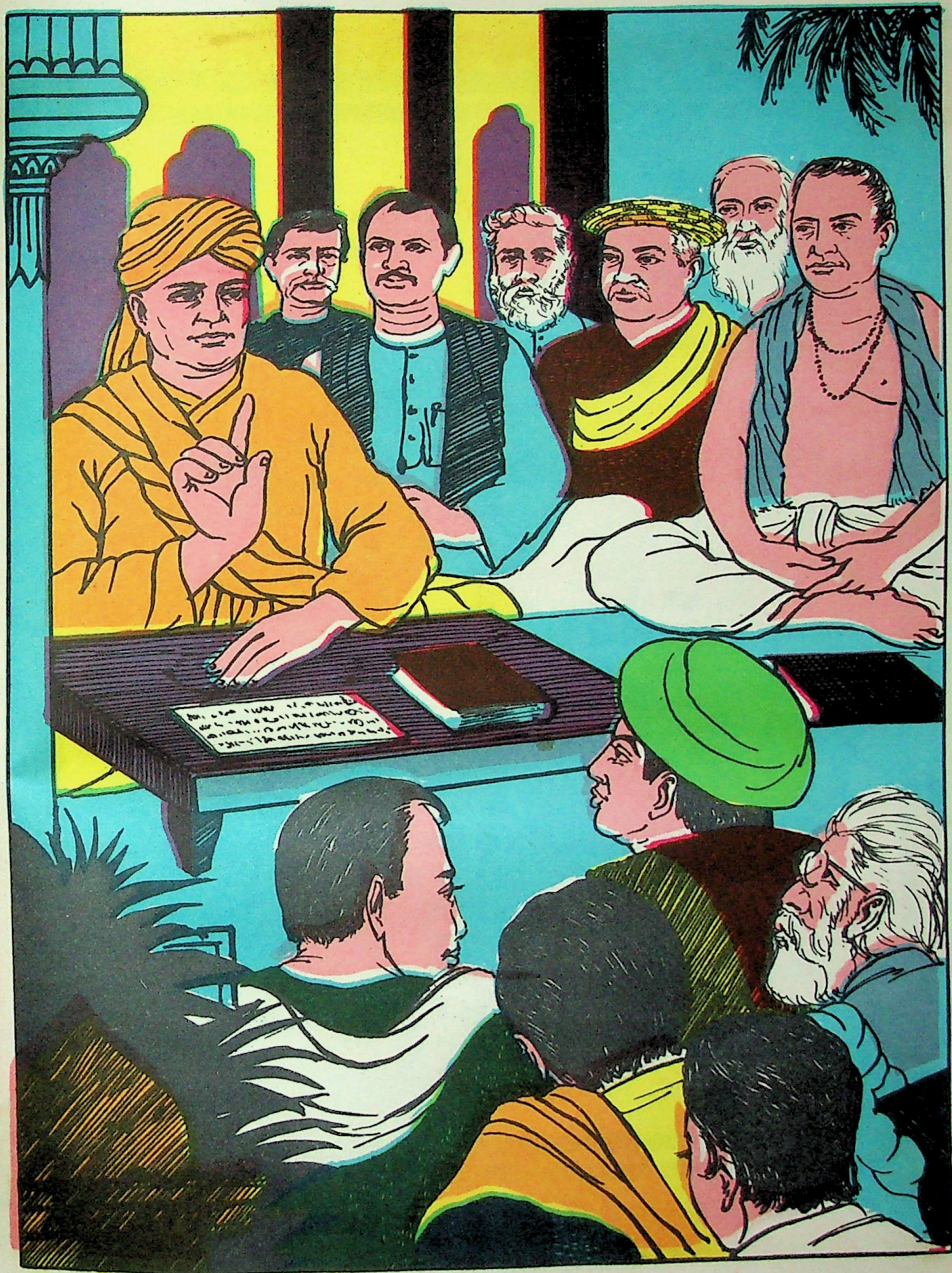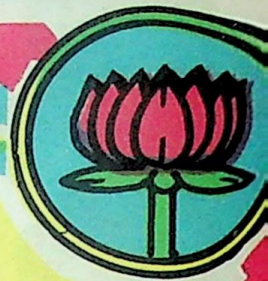
मत मारो, जीने दो सबको

जिसने विष का पान कराया,
उस पर भी तो स्नेह दिखाया,
क्रोध किसी पर कभी न आया,
ऐसे ऊँचे देव पुरुष थे ।

प्यार मंत्र था, सत्य अस्त्र था,
'वेद' ज्ञान ही लक्ष्य बना था,
पाखंडों का खंडन करना,
कभी किसी से भी ना डरना,

ऋषि ने समझा सत्य प्रभु का,
जाना जीवन का रहस्य था ।
अंधकार का नाश धरा से,
करना ही तो इष्ट बना था ।

महापुरुष ने दीन दलित को,
उठा-उठाकर गले लगाया,
भूले बिसरे भटके जन को,
सत्य ज्ञान का मर्म बताया ।

दया-धर्म के स्रोत दयानन्द,
वैर भाव से, क्रोध काम से, बहुत दूर थे ।
क्षमा किया सब को ही मन से,
धन्य धन्य वे देव दयानन्द !!
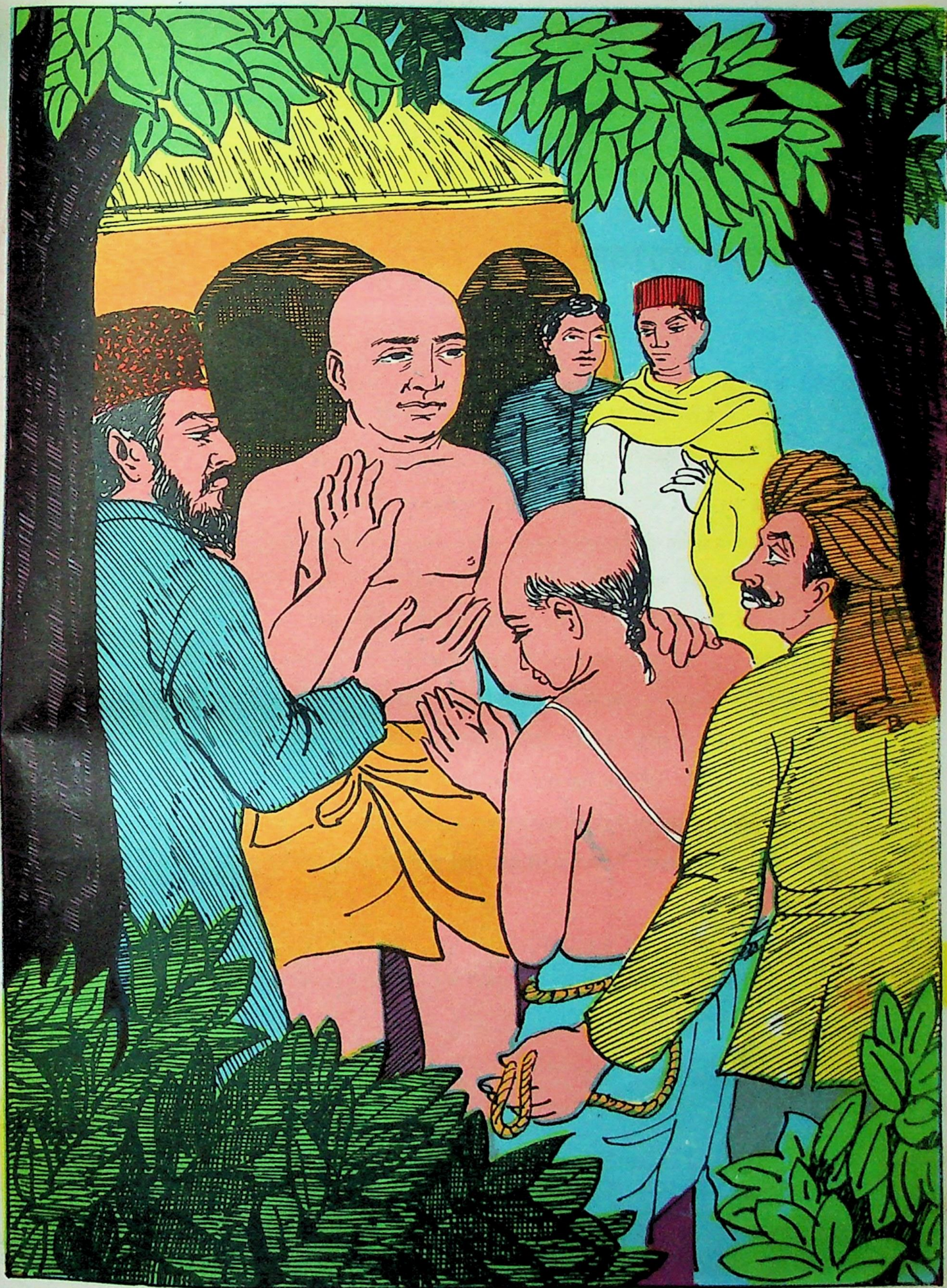
महाराज यशवन्तसिंह : महर्षि के चरणों में

महर्षि दयानन्द के जोधपुर पहुँचने के बाद यशवन्तसिंहजी समारोहपूर्वक ऋषि-दर्शनों के लिए आये। समीप पाकर उन्होंने विनयपूर्वक चरण स्पर्श एवं अभिवादन किया। एक सौ रुपये और पाँच स्वर्ण-मुद्राएँ भेंट रखीं। यद्यपि यहाँ कुर्सियों का प्रबन्ध था और स्वामीजी ने उन्हें कुर्सी पर बैठने के लिए कहा भी परन्तु जोधपुराधीश फर्श पर ही बैठ गये। उन्होंने कहा—'आप हमारे स्वामी हैं और हम आपके सेवक हैं अतः आपके सामने नीचे आसन पर बैठने में ही हमारी शोभा है।' महाराज को फर्श पर बैठे देख ऋषि खड़े हुए और उनका हाथ पकड़ उन्हें कुर्सी पर बिठा दिया। कुशल-क्षेम पूछने के पश्चात् महाराजा ने अमृतोपदेश सुनने की इच्छा प्रकट की। स्वामीजी ने मनुस्मृति के अनुसार राजधर्म का उपदेश दिया। स्वदेश-प्रेम, प्रजापालन, न्याय व्यवस्था आदि के सम्बन्ध में उचित परामर्श दिया देश-द्रोह और पारस्परिक फूट के दोषों पर प्रकाश डाला। तीन घण्टे तक महाराज राजनीति के तत्वों को समझाते रहे। चलते समय यशवन्तसिंहजी ने निवेदन किया—'आपका यहाँ पदार्पण हमारे भाग्य का शुभ सूचक है। श्री चरणों में यह निवेदन है कि जब तक आप यहाँ वास करें अपने उपदेशामृत से लोगों को कृतार्थ करते रहें।'

देश के पथ-भ्रष्ट राजाओं को सुधार कर महर्षि राष्ट्र को पुनः स्वतन्त्र करने यत्नशील रहे।

जोधपुर नरेश को फटकार

जोधपुर के राजा यशवन्तसिंह का नन्हीं जान नाम की वेश्या से गहरा सम्बन्ध था। एक दिन निश्चित नियम के अनुसार स्वामी जी महल में पहुँचे। महाराज उस समय नन्हीं जान को विदा कर रहे थे। डोली उठने से पहले ही स्वामी जी के पहुँचने पर राजा यशवन्तसिंह घबरा गए और डोली को स्वयं कन्धा लगाकर उठवा दिया।

नन्हीं जान तो चली गयी परन्तु यह दृश्य देखकर स्वामी जी का हृदय अत्यन्त दुःखी हुआ। वे बोले, राजन् ! राजा लोग सिंह समझे जाते हैं और स्थान-स्थान पर भटकने वाली वेश्या कुतिया के समान है। सिंह का कुतिया पर आसक्त होना किसी भी दृष्टि से शोभा नहीं देता।

स्वामी जी के शब्द नन्हीं जान तक भी पहुँचे। वह स्वामी जी को मिटाने पर तुल गयी। प्रतिहिंसा की ज्वाला में वह जल उठी।

अंग्रेज स्वामी जी से शत्रुता रखते थे। वे भी इस षड्यन्त्र में शामिल हो गए। मुसलमान भी मिल गए और फिर भारत के भाग्य पर चमकते सूर्य को बुझाने की तैयारियाँ होने लगीं।

जीवन-भर जिस महापुरुष ने धर्म को जीवित किया। जो सदा सत्य का प्रचार करता रहा, पाखंडों पर किये जिस के प्रहारों ने सर्वत्र नयी ज्योति को जन्म दिया उस देव पुरुष को समाप्त करने का षड्यन्त्र जोधपुर में नन्हीं जान वेश्या के द्वारा संचालित हुआ—

भारत का भाग्य विधाता, आर्य जाति का उद्धारक, रक्षक और नारी जाति का संरक्षक एक भटकी हुई नारी की क्रोधाग्नि की भेंट चढ़ गया। एक बार फिर महानाश ने निर्माण को समाप्त करने में सफलता प्राप्त की।

हाय रे दुर्भाग्य……

विष दाता को क्षमादान !

धरती पर कोई उदाहरण ऐसा ढूंढने पर न मिलेगा जब मरने वाले ने मारने वाले को बचाया हो ! किन्तु स्वामी दयानन्द ने अपने विषदाता जगन्नाथ को ५००) देकर दूर भाग जाने की प्रेरणा दे उस की प्राण रक्षा की !

जोधपुर में जब स्वामी जी ने महाराजा को वेश्या-वृत्ति के लिए फटकारा तो नन्हीं जान उन की शत्रु बन गयी ! अनेक विरोधी इकट्ठे हो गये और जैसे भी संभव हो स्वामी जी का जीवन समाप्त करने की योजनाएँ बनने लगीं !

बहुत सोच-विचार के बाद निश्चय किया गया कि जगन्नाथ पाचक को तैयार किया जाए और वह सोते समय स्वामी जी को दूध में विष मिलाकर पिला दे ।

२९ सितम्बर १८८३ की रात्रि को पापी जगन्नाथ ने दूध में जहर मिला कर स्वामी जी को पिला दिया । थोड़ी देर बाद ही भयंकर उदर वेदना हुई । अनेक यत्न किए । पर दर्द बढ़ता गया और रोग भी घातक बन गया !

स्वामी जी ने अपनी दिव्य दृष्टि से विषदाता जगन्नाथ को पहचान लिया, परन्तु उसे कुछ नहीं कहा । उस पर दया बरसाते हुए स्वामी जी बोले, जगन्नाथ ! मेरे इस समय मरने से मेरा कार्य सर्वथा अधूरा रह गया ! पर जैसी प्रभु इच्छा, लो ये पाँच सौ रुपये और नेपाल भाग जाओ ! तुम्हारे काम आयेंगे !

दयानन्द धन्य था, उस की क्षमा धन्य थी ! कितना अद्भुत था यह दृश्य ! विषदाता को भी प्राण दान ! कितना अद्भुत था यह दृश्य ! विषदाता को भी प्राण दान ! सचमुच दयानन्द दया का सागर था !
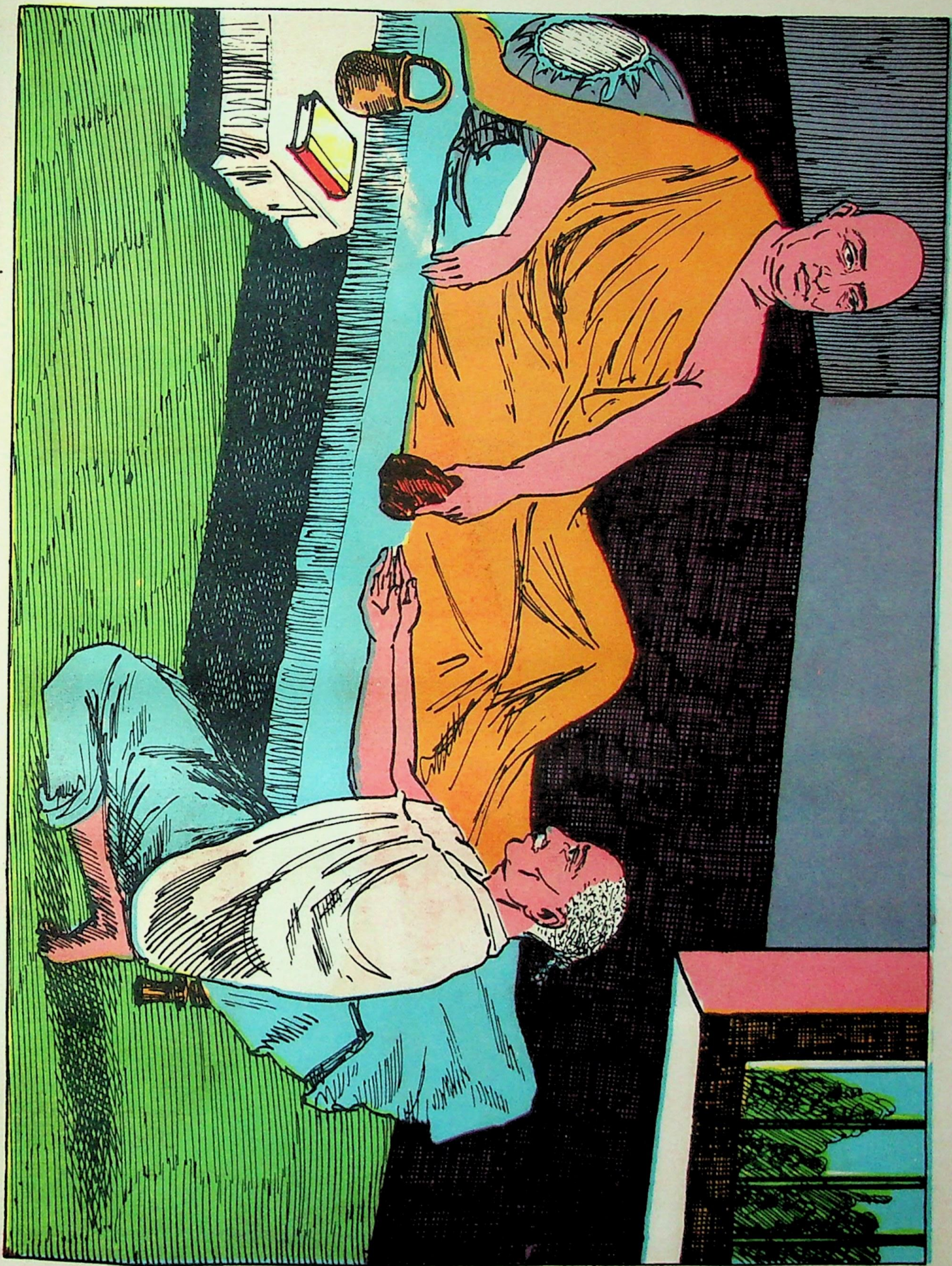
महाप्रयाण !
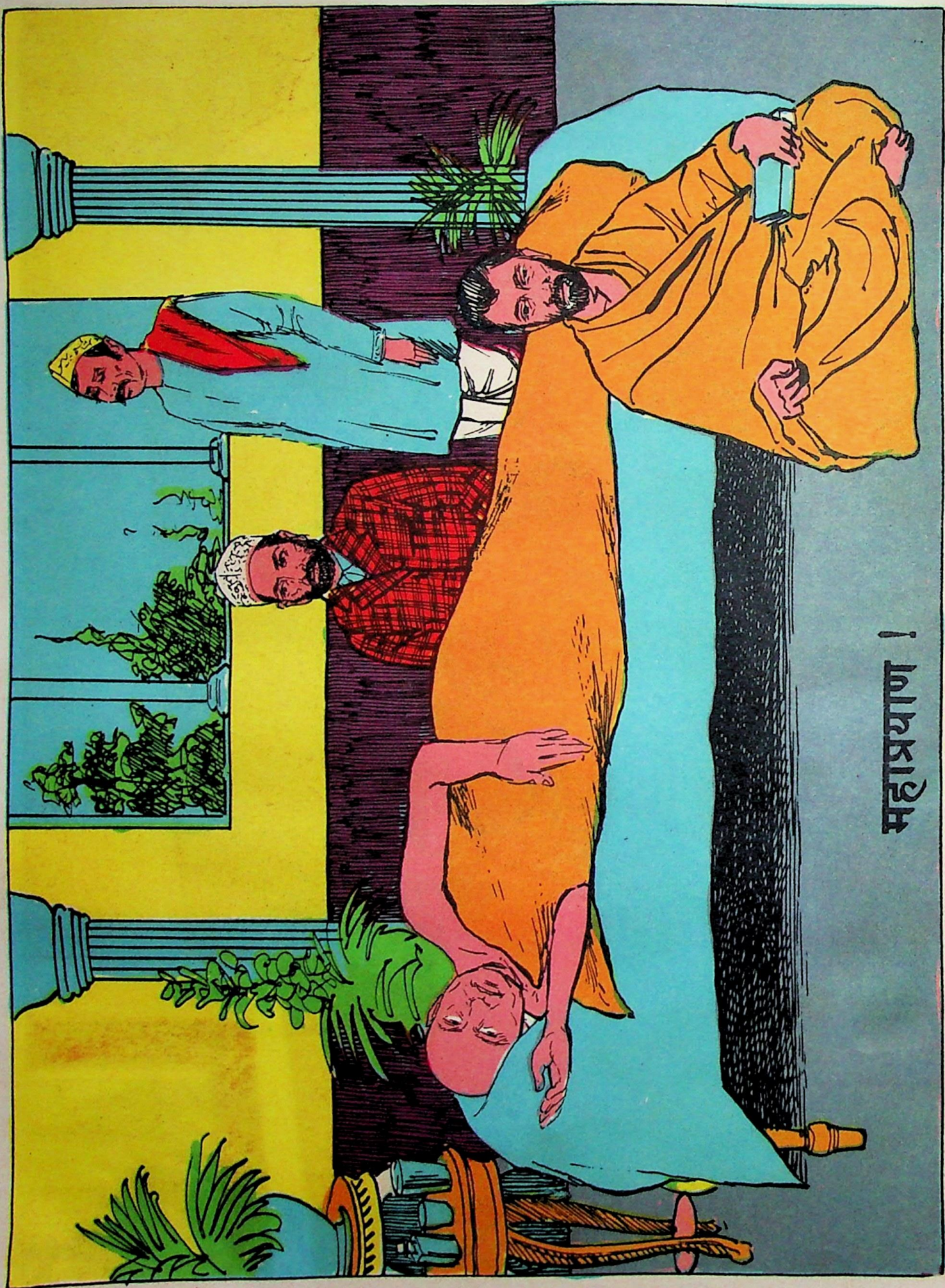
महाप्रयाण !

३० अक्तूबर १८८३

दीप पंक्तियों से सारा भारत जगमगा रहा था, किन्तु भारत के भाग्य को नया जन्म देने वाला महापुरुष संसार से विदा हो रहा था ।

सायं ५ बजे का समय था ।

स्वामी जी ने पूछा आज कौन-सा मास, पक्ष और दिन है ? उत्तर मिला मंगलवार कार्तिक अमावस्या है ।

स्वामी जी ने सब दरवाजे व रोशनदान खुलवा दिए । ऊपर की ओर दृष्टिपात किया और वेद मंत्रों का पाठ करना आरम्भ कर दिया । फिर संस्कृत में उपासना की । प्रभु गुणगान के साथ आनन्द मग्न हो गायत्री का उच्चारण किया और शान्त समाधिस्थ हो गये । पुनः आंखें खोल कर "ओ३म्" का उच्चारण किया और बोले—

'हे दयामय सर्वशक्तिमान् ईश्वर, तेरी यही इच्छा है, तेरी यही इच्छा है ।

तेरी इच्छा पूर्ण हो ! अद्‌भुत तेरी लीला है ।'

इन शब्दों के साथ करवट ली । एक बार श्वास को रोक पुनः सदा के लिए बाहर निकाल दिया । दीपमाला, सायं ६ बजे का समय था, देव दयानन्द की लोक-लीला पूर्ण हुई ।

जिस महान् आत्मा ने भारत को बचाया, धर्म, संस्कृति, ज्ञान, सत्य को नया जन्म दिया । प्रभु को वाणी "वेद" का उद्धार ओर प्रचार किया । वह सच्चा महामानव परमात्मा का संदेश फैलाने वाला, दीपकों की जगमग के साथ धरती से विदा हुआ ।

नया युग दयानन्द का युग है । सत्य की साधना, ज्ञान की कामना और धर्म की स्थापना के लिए संसार का प्रत्येक व्यक्ति ऋषि का ऋणी रहेगा—उस का मन सदा गुँजायेगा ।

ऋषि दयानन्द की जय !
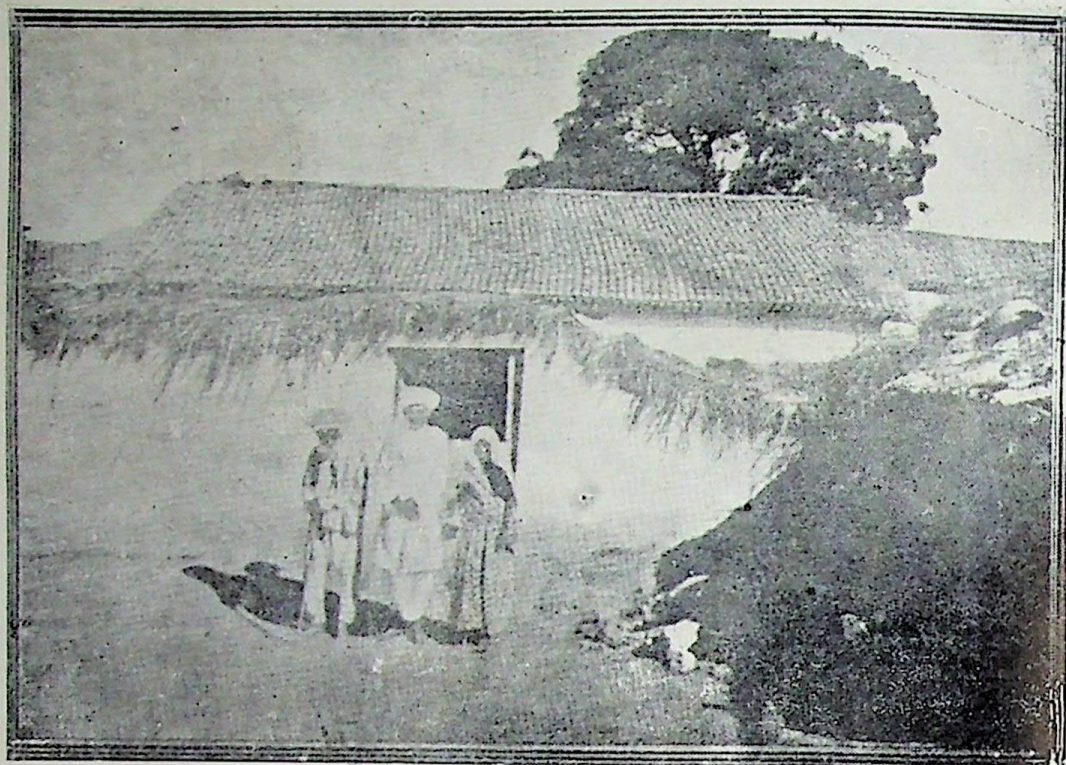
टंकारा (राजकोट) गुजरात का वह मकान जहां १२ फरवरी सन् १८२५ को बालक मूलशंकर ने जन्म लिया।

महर्षि दयानन्द को स्मृति में भारत सरकार द्वारा जारी किये गये डाक टिकट की प्रतिलिपि

नवयुग प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती

महर्षि दयानन्द : फोटो प्रति

अजमेर का
भिनायी हाउस

३० अक्तूबर १८८३
को दीपमाला के दिन
महर्षि ने इह लोक
लीला पूर्ण की ।
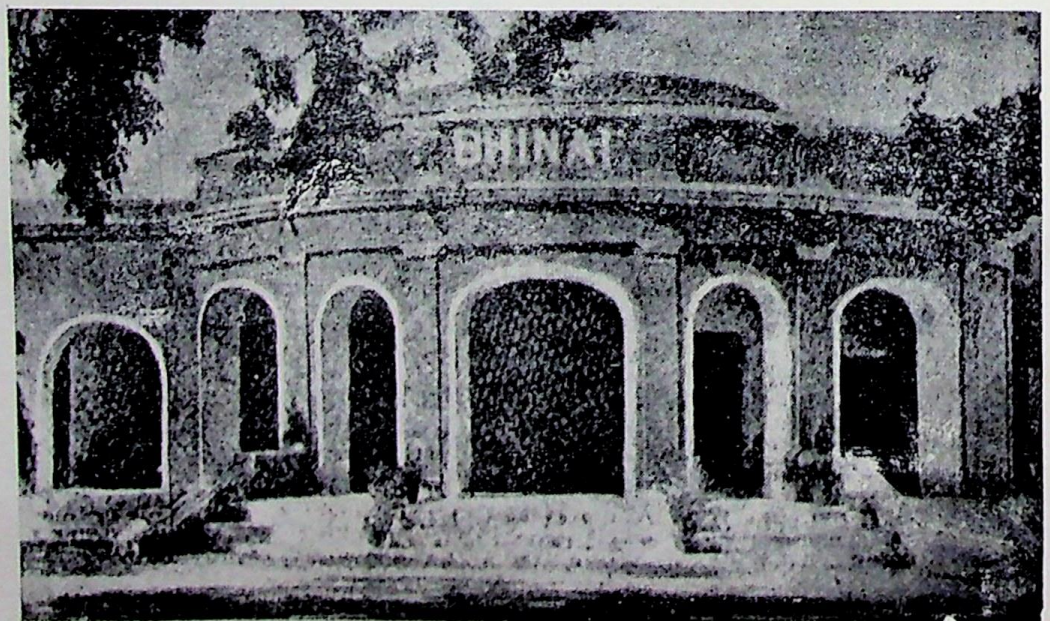
महर्षि दयानन्द कुर्सी पर बैठे हैं
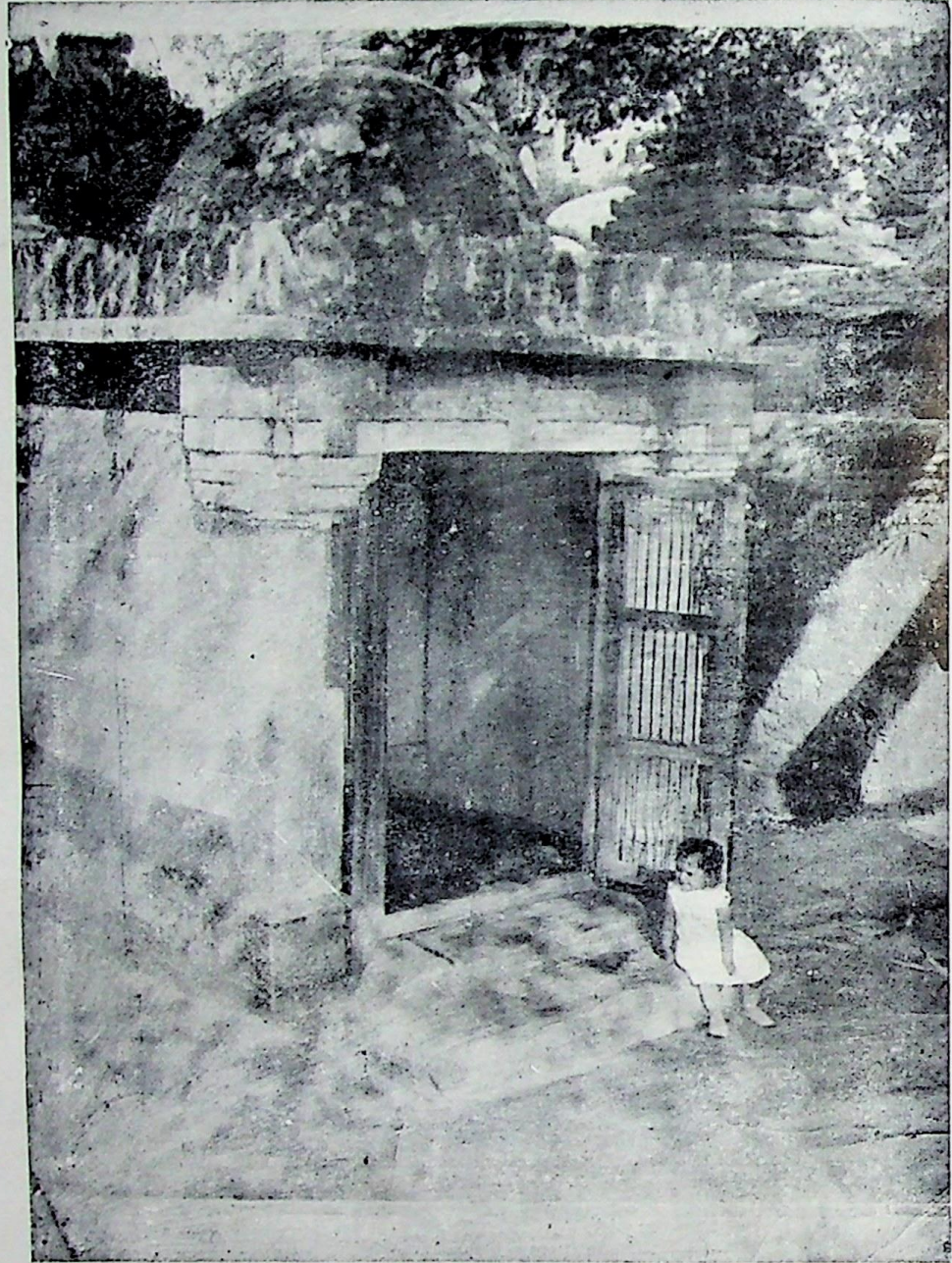
टंकारा का वह शिव मंदिर जहां मूलशंकर को शिवरात्रि के दिन बोध हुआ था ।

महर्षि दयानन्द सरस्वती अपने शिष्य ब्र० रामानन्द के साथ
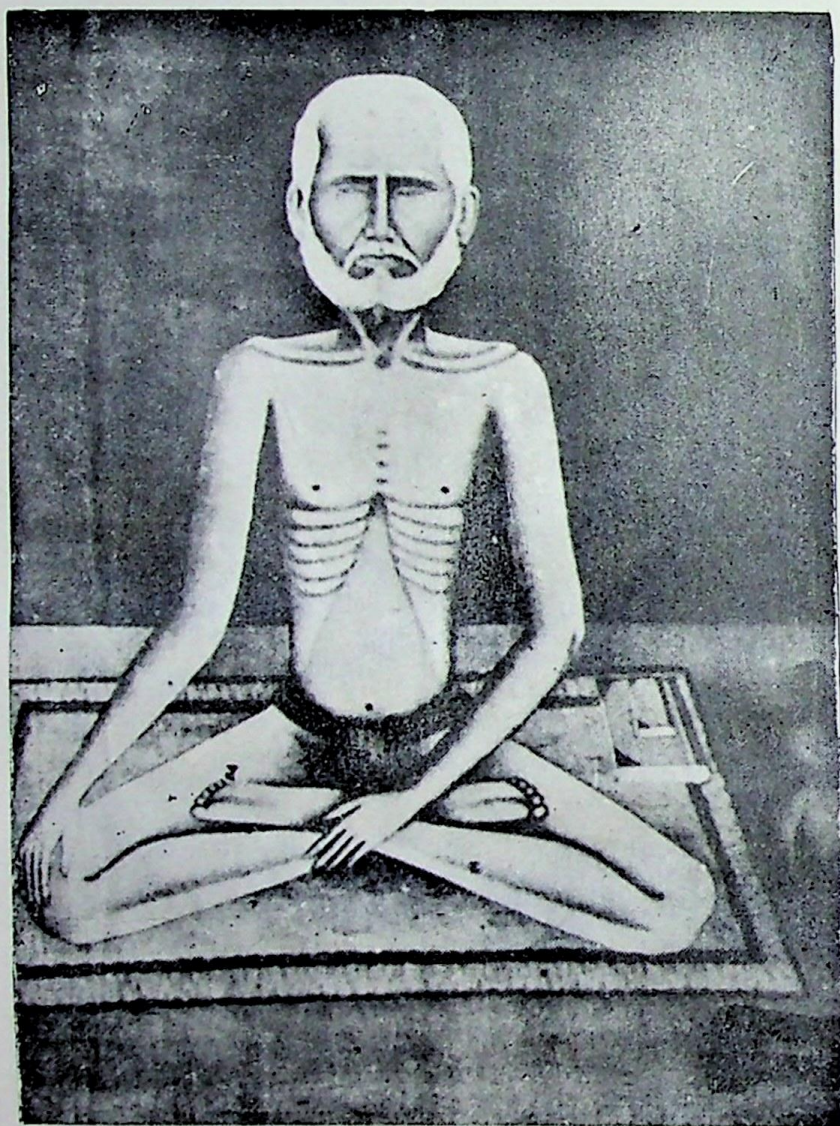
महर्षि दयानन्द को ज्ञान चक्षु प्रदान करने वाले

दंडी स्वामी श्री विरजानन्द जी महाराज

महर्षि दयानन्द : कुर्सी पर

महर्षि के हस्त लेख का चित्र

समाधि अवस्था में योगीराज स्वामी दयानन्द सरस्वती का
असली चित्र
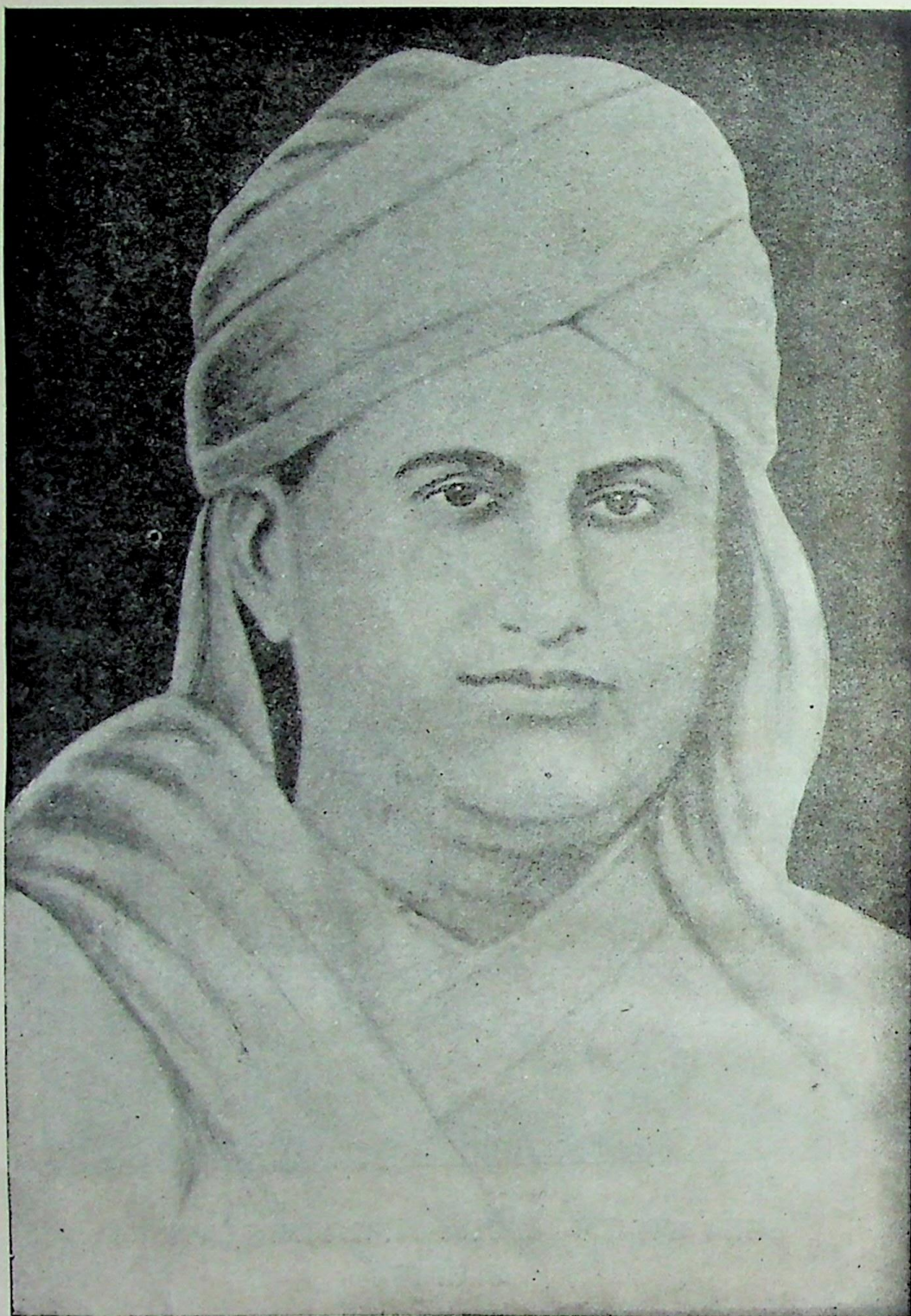
स्वामी दयानन्द सरस्वती का चित्र : कलाकार द्वारा निर्मित
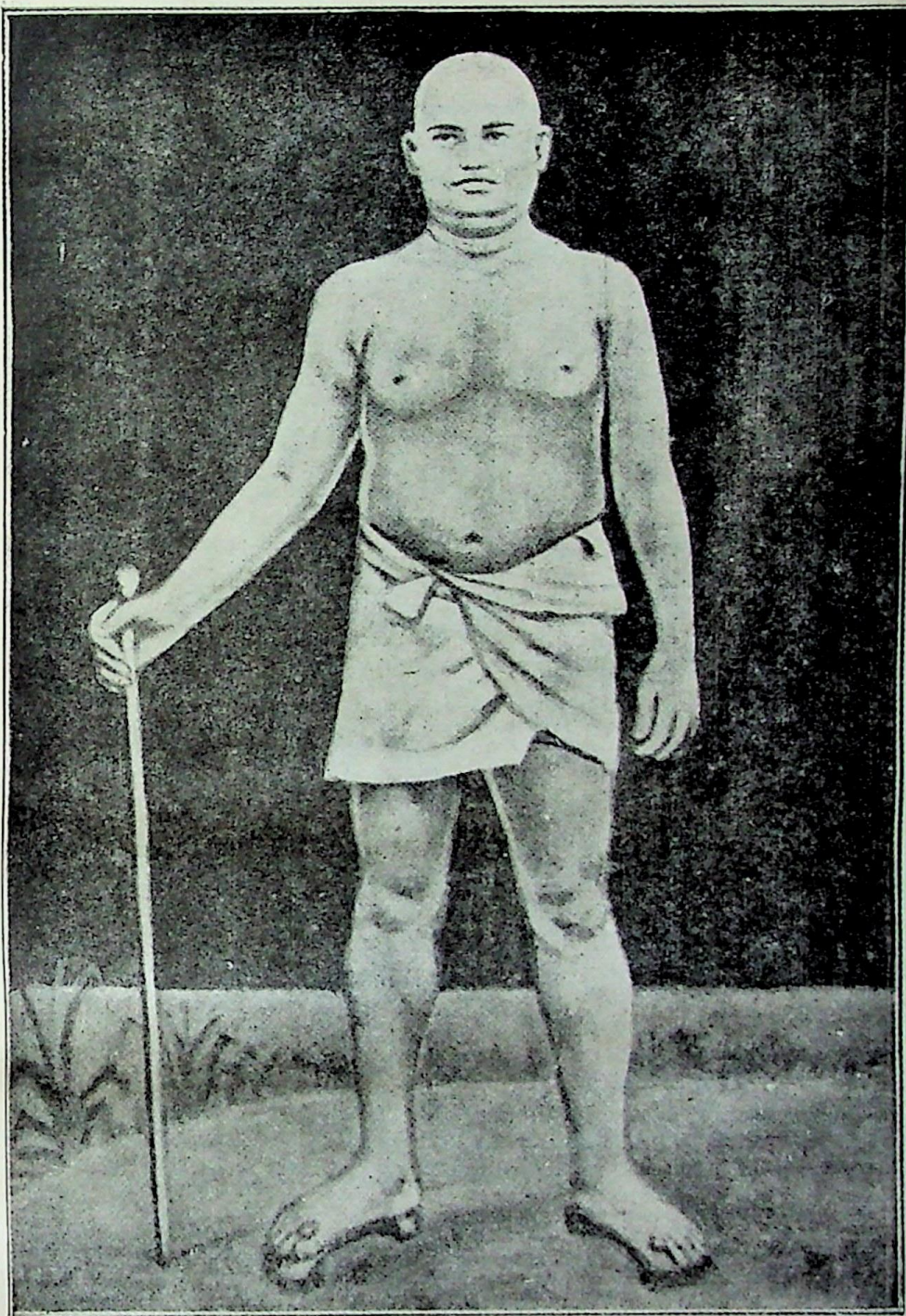
सर्वस्व त्यागी महर्षि दयानन्द सरस्ती

स्वामी दयानन्द का चित्र : कलाकार द्वारा निर्मित
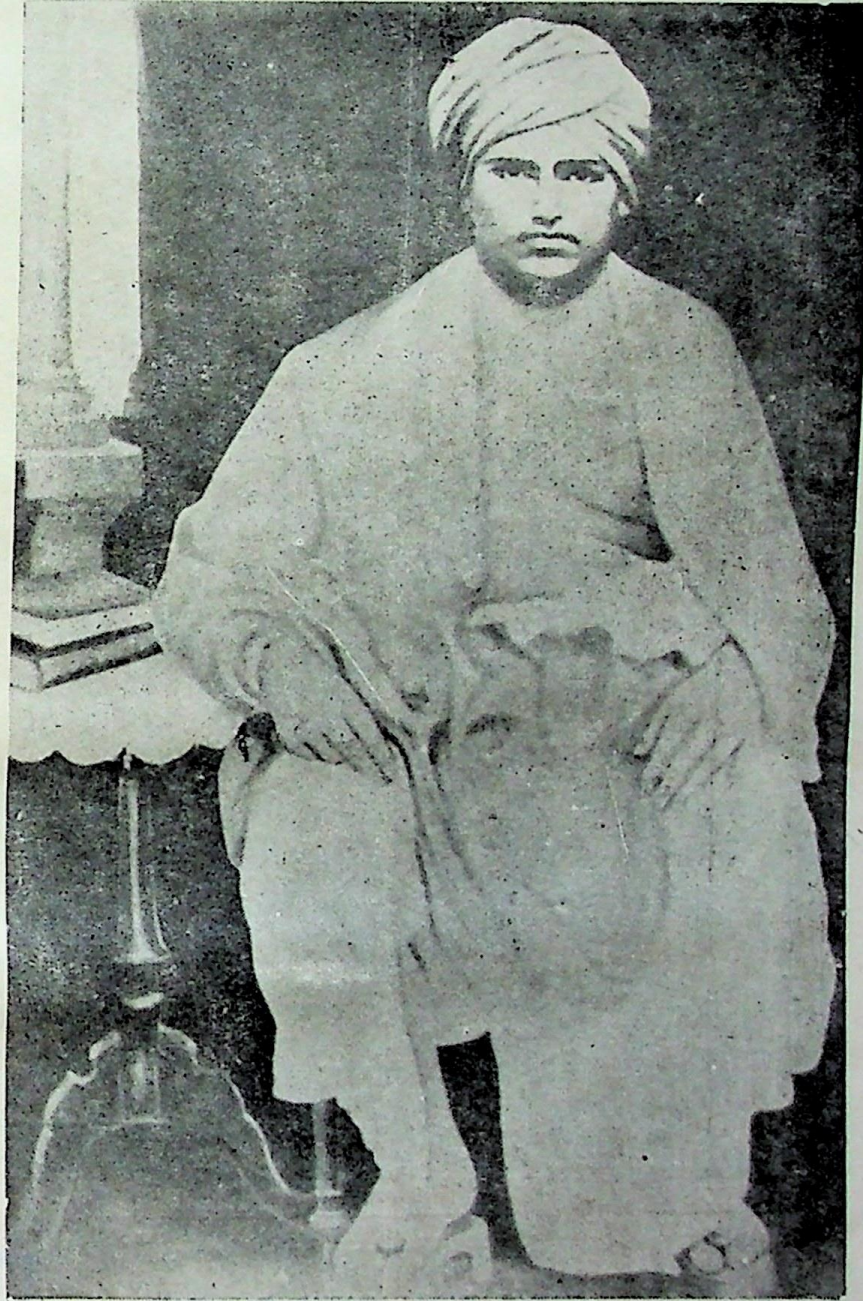
महर्षि दयानन्द सरस्वती : फोटो चित्र

महर्षि दयानन्द उपदेश देते हुए

रंगीन पृष्ठ हिन्दुस्तान आफसैट प्रैस और सादे पृष्ठ सैनी प्रिण्टर्स, दिल्ली में छपे।

प्रस्तुतकर्त्ता:-भारतेन्द्रनाथ। चित्रकार:-ओ.के. बम्बई।

मूल्य २० रु०

प्रकाशकः-

दयानन्द-संस्थान

नई दिल्ली-५